॥ श्री स्वामिनारायणो विजयते ॥

सत्संग शिक्षणश्रेणी की पाठ्यपुस्तक : 7

किशोर सत्संग प्रवेश

लेखक
साधु विवेकसागरदास
(वाचस्पति)

प्रकाशक
स्वामिनारायण अक्षरपीठ
शाहीबाग, अहमदाबाद - 380 004.

KISHORE SATSANG PRAVESH (Hindi Edition)
(Life sketches of prominent devotees of Bhagwan Swaminarayan)

By Sadhu Viveksagardas

A textbook for examination prescribed under the curriculum set by Bochasanwasi Shri Akshar Purushottam Swaminarayan Sanstha.

Inspirer: HDH Pramukh Swami Maharaj

Presented by:

Bochasanwasi Shri Akshar Purushottam Swaminarayan Sanstha 'Swaminarayan Akshardham', N.H. 24, Akshardham Setu, Yamuna Kinara, New Delhi - 110 092. India.

Publishers:

SWAMINARAYAN AKSHARPITH
Shahibaug, Amdavad - 380 004. India.

..th Edition:

January 2009. Copies: ..,... (Total Copies: ..,...)

Warning:

Copyright: ©Swaminarayan Aksharpith

This book is published by Swaminarayan Aksharpith. Material from this book cannot be used without due acknowledgement to Swaminarayan Aksharpith, Shahibaug, Amdavad. For any reprints the written permission of the publishers is necessary.

ISBN:

रजूकर्ता : बोचासणवासी श्री अक्षरपुरुषोत्तम स्वामिनारायण संस्था (बी.ए.पी.एस.)
'स्वामिनारायण अक्षरधाम', नेशनल हाईवे 24, अक्षरधाम सेतु,
यमुना किनारा, नई दिल्ली - 110 092.

प्रेरणामूर्ति : प्रकट ब्रह्मस्वरूप प्रमुखस्वामी महाराज

सूचना : सर्वाधिकार सुरक्षित : © स्वामिनारायण अक्षरपीठ
इस पुस्तक के अंश किसी भी स्वरूप में प्रकाशित करने के लिए प्रकाशक की लिखित सम्मति अनिवार्य है।

.. संस्करण : जनवरी, 2009

प्रति : ..,.. (कुल प्रति : ..,..)

मूल्य : रु. .....

मुद्रक एवं प्रकाशक :
स्वामिनारायण अक्षरपीठ
शाहीबाग, अहमदाबाद-380 004.

कृपाकथन

ब्रह्मस्वरूप स्वामीश्री योगीजी महाराज द्वारा स्थापित व पोषित युवक प्रवृत्ति तीव्र गति से विस्तृत होती जा रही है। इस प्रवृत्ति से जुड़े युवाओं की आकांक्षा तथा ज्ञानपिपासा को संतुष्ट करने तथा उन्हें भगवान स्वामिनारायण प्रबोधित अक्षरपुरुषोत्तम के सिद्धांत की ओर अभिमुख करने के उद्देश्य से बोचासणवासी श्री अक्षरपुरुषोत्तम स्वामिनारायण संस्था ने क्रमबद्ध पुस्तकों के प्रकाशन का आयोजन किया है।

इन पुस्तकों द्वारा बालकों और युवाओं को व्यवस्थित, सुगम तथा सरल ढंग से सत्संग का शुद्ध ज्ञान प्राप्त होगा। भगवान स्वामिनारायण द्वारा उद्‌बोधित आदर्शों के पालन व प्रचार के लिए ब्रह्मस्वरूप शास्त्रीजी महाराज द्वारा स्थापित यह संस्था, इस प्रकार की अनेक सत्संग प्रवृत्तियों में संलग्न है कि जिससे विश्व में हमारी महान हिन्दू संस्कृति का प्रचार व प्रसार हो।

भगवान स्वामिनारायण का दिव्य संदेश विश्व के कोने-कोने में प्रसारित हो तथा सभी मुमुक्षुओं को शुद्ध ज्ञान की प्राप्ति हो इसी हेतु इन पुस्तकों का भिन्न-भिन्न भाषाओं में प्रकाशन किया गया है।

इन पुस्तिकाओं के आधार पर सत्संग शिक्षण परीक्षाएँ आयोजित की जाएँगी साथ ही बालकों-युवकों को प्रमाणपत्र देकर प्रोत्साहित किया जाएगा। इस पुस्तकों को तैयार करने में ईश्वरचरण स्वामी, रमेशभाई दवे, किशोरभाई दवे तथा अन्य सहयोगियों ने भारी परिश्रम उठाया है, उनको हमारे आशीर्वाद हैं।

अत्यंत स्नेहपूर्वक
जय श्री स्वामिनारायण।
शास्त्री नारायणस्वरूपदासजी
(प्रमुखस्वामी महाराज)

निवेदन

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान स्वामिनारायण अपने प्रियभक्त अक्षरब्रह्म गुणातीतानन्द स्वामी के साथ इस ब्रह्मांड में पधारे। सद्गुरु गोपालानन्द स्वामी, सद्गुरु मुक्तानन्द स्वामी, सद्गुरु निष्कुलानन्द स्वामी, सद्गुरु नित्यानन्द स्वामी, मुकुन्द ब्रह्मचारी, दादाखाचर, पर्वतभाई, गोवर्धनभाई, लाडुबाई, जीवुबाई आदि अक्षर मुक्तों को भी वे अपने साथ लेकर पधारे।

इन महासमर्थ मुक्तों के चरित्र भी अद्भुत एवं प्रेरणादायी हैं। भगवान स्वामिनारायण के प्रति उनकी निष्ठा एवं भक्ति अनन्य थी। श्रीहरि ने उनकी सामर्थ्य तथा उनकी विशेषताएँ छिपा कर रखी थी। फिर भी प्रसंगवश कभी-कभी व्यक्त हुई उनकी विशेषता कम आश्चर्यजनक नहीं है।

इन मुक्तों का जीवन-चरित्र अत्यधिक प्रेरक होने के कारण 'सत्संग वाचनमाला' नामक इस पुस्तिका में उनके चरित्रों का संकलन किया गया है। इसी परंपरा में आनेवाले अनन्य भक्तों के चरित्रों का समावेश इस पुस्तिका में किया गया है।

ऐसे चरित्रों की और पुस्तकें भी प्रकाशित हुई है, जिनमें विशिष्ट मुक्तात्माओं के चरित्रों का विवरण प्रस्तुत किया गया हैं।

सत्संग परीक्षाओं के अभ्यासक्रम के अंतर्गत तैयार की गई पुस्तिकाओं में द्वितीय स्तर की परीक्षा 'सत्संग प्रवेश' के नाम से ली जाएगी। उक्त परीक्षा के लिए यह पुस्तिका हम आप के हाथों में रखते हुए अत्यंत ही आनंदित हैं।

श्रीहरि, गुणातीतानंद स्वामी एवं प्रकट गुरुहरि श्री प्रमुखस्वामी महाराज की प्रसन्नता के लिए, सत्संगी किशोर इस अभ्यासक्रम को तैयार करें, सत्संगज्ञान की परीक्षाएँ दें और सफलता पाकर उच्च स्तरीय प्रमाणपत्र प्राप्त करें, यही शुभ कामना और अभ्यर्थना के साथ प्रस्तुत चरित्र पुस्तिका आप के हाथों में समर्पित करते हैं।

- प्रयोजक

॥ श्रीस्वामिनारायणो विजयते ॥

हम सभी स्वामी के बालक, मरेंगे स्वामी के लिए ।
हम सभी श्रीजी के युवक, लड़ेंगे श्रीजी के लिए ॥

नहीं डरते नहीं करते, हमारी जान की परवाह ।
हमें है भय नहीं किसीसे, जन्मे हैं मृत्यु के लिए ॥

हमने है यज्ञ आरंभा, सदा बलिदान हम देंगे ।
हमारा अक्षरपुरुषोत्तम, गुणातीत गान के लिए ॥

हम सभी श्रीजी की संतान, अक्षर में वास हमारा है ।
स्वधर्मी भभूत समाई है, अब हमें शर्म किसके लिए ॥

मिले हैं मोती-से स्वामी, हुए हम पूर्णकाम सभी ।
प्रगट पुरुषोत्तम पाये, संत से मुक्ति के लिए ॥

क्रमिका

1. शिक्षापत्री 1
2. सगराम 13
3. व्यापकानन्द स्वामी 16
4. गोडी 19
5. धुन 19
6. श्रीस्वामिनारायणाष्टकम्२ 20
7. प्रार्थना 22
8. रत्नाकर और चार भाई 23
9. नेनपुर के देवजी भगत 25
10. गुरु-शिष्य 27
11. आत्मानन्द स्वामी 30
12. बोचासण के काशीदास 33
13. प्रार्थना 37
14. भुज की लाधीबाई 38
15. दुबली भट्ट 40
16. व्रत और उत्सव 43
17. माताजी 59
18. राणा राजगर 62
19. वचनामृत 65
20. प्रभाशंकर और देवराम 66
21. सच्चिदानन्द स्वामी 68
22. सुभाषित 71
23. जालमसिंह बापू 72
24. अक्षरमूर्ति गुणातीतानन्द स्वामी की बातें 75
25. कीर्तन 82

किशोर सत्संग प्रवेश

1. शिक्षापत्री

(सामान्य नियम-विभाग 1)

मनुष्य और पशु में इतना ही अन्तर है कि मनुष्य के ऊपर धर्म की मर्यादाएँ हैं, परन्तु पशु के ऊपर नहीं हैं। धर्म के अनुशासन के बिना मनुष्य का जीवन पशुजीवन ही है। श्रीहरि ने कहा है कि 'धर्म अर्थात् सदाचार।' हमारे धर्मशास्त्रों में आचार, व्यवहार एवं प्रायश्चित्त के विषय में बहुत सी बातें लिखी हैं। धर्म के महासागर को श्रीहरि ने 'शिक्षापत्री' रूपी गगरी में भर दिया है, शिक्षापत्री केवल आचारसंहिता ही नहीं है; वह तो चारों पुरुषार्थ सिद्ध करने की मार्गदर्शिका भी है, श्रीहरि ने धर्म के बाँध को इस प्रकार विशेष मजबूत किया है।

'सर्व जीव हितकारी' शिक्षापत्री का हेतु और उसकी महिमा समझाते हुए श्रीजीमहाराज कहते हैं कि 'सभी सत्शास्त्रों का सार निकालकर यह शिक्षापत्री रची गई है, हमारे आश्रितों को चाहिए के वे सावधानीपूर्वक प्रतिदिन इस ग्रंथ के अनुसार ही बरतें, अपनी मनमानी तो कभी नहीं करना।' अर्थात् कि स्वच्छन्द आचार छोड़कर श्रीहरि की आज्ञा के अनुसार बरतना।

'जो भक्त शिक्षापत्री के अनुसार जीवनव्यवहार करेगा, वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों को निश्चितरूप से प्राप्त करेगा' श्रीहरि का यह वरदान है। उन्होंने यह भी कहा था कि 'यह जो हमारी वाणी है, वह हमारा ही स्वरूप है; ऐसा समझकर आदरपूर्वक उसे सबको अपनाना चाहिए।'

इसीलिए शिक्षापत्री के नित्यपाठ का विधान किया गया है। श्रीहरि ने वचनामृत में इस विषय पर विशेष रूप से प्रकाश डाला है और कहा है कि 'हमारे आश्रित त्यागी साधुओं, ब्रह्मचारियों, गृहस्थ महिलाओं तथा भक्तों को हमारी लिखी हुई शिक्षापत्री का नित्य पाठ करना। जिसे पढ़ना न आता हो, उसे शिक्षापत्री का नित्य श्रवण करना। जिसे उसका श्रवण करने का योग न आए, वह प्रतिदिन शिक्षापत्री की पूजा करे। इस प्रकार हमने शिक्षापत्री में ही लिखा है। यदि किसी को इन तीनों नियमों के पालन में विघ्न पड़ जाए, तो उसे एक उपवास कर लेना, ऐसी हमारी आज्ञा है।' (वच. ग. अं. 1)

वाणी, विचार और आचार - तीनों का समन्वय शिक्षापत्री के अनुसार

जीने से ही हो सकता है। शिक्षापत्री के नियम केवल शौच-पवित्रता और सदाचार के स्थूल नियम ही नहीं हैं, परन्तु श्रीहरि की प्रसन्नता के लिए दिए गए दिव्य नियम हैं। उनके यथोचित पालन से मोक्ष-प्राप्ति होती है। ये नियम, बिना अनुशासन के आचरण में नहीं उतरते। अत: प्रकट सत्पुरुष के आश्रय से ही श्रीहरि की आज्ञाओं का पालन करने में आसानी होती है।

पूर्वजन्म के पवित्र संस्कारों के सहारे मुमुक्षु पृथ्वी पर विचरण करनेवाले परम एकान्तिक सन्त के सम्पर्क में आता है। उनकी आज्ञा से मुमुक्षु पाँच वर्तमानों (नियमों) का पालन करने का निश्चय करता है। गुरु उसको दीक्षा-मंत्र देकर कहते हैं कि 'काल, माया, पापकर्म और यमदूतों के भय से छुटकारा पाने के लिए मैं स्वामिनारायण की शरण ग्रहण करता हूँ, वह मेरी रक्षा करें।' यह मंत्र इस प्रकार है :

कालमायापापकर्म-यमदूतभयादहम् ।
स्वामिनारायणशरणं प्रपन्नोऽस्मि स पातु माम् ॥ ४१ ॥

ऐसे वर्तमान धारण करनेवाले को श्रीहरि अपनी शरण में लेते हैं और उसे पापमुक्त करके सत्संगी बनाते हैं तथा अक्षर एवं पुरुषोत्तम के प्रतीक रूप तुलसी की दो लड़ीवाली कण्ठी उस मुमुक्षु के गले में पहनाते हैं। सत्संगी जीवनभर यह कण्ठी अपने गले में पहनते हैं, ताकि भगवान उसकी निरन्तर रक्षा करने का बन्धन स्वीकार करते रहें।

नित्यकर्म

शिक्षापत्री के अनुसार अब सत्संगी के नित्यकर्म के बारे में विचार करें।

त्यागी हो या गृहस्थाश्रमी, श्रीहरि के आश्रितों को प्रात:काल सूर्योदय के पूर्व उठना चाहिए और भगवान का ध्यान करना चाहिए। देर से उठने पर हमारे पुण्यों का क्षय होता है। प्रात:काल उठ जाने से शारीरिक स्फूर्ति एवं मानसिक प्रसन्नता भी रहती है। ब्राह्ममुहूर्त में उठने से अच्छे विचार उत्पन्न होते हैं तथा सात्त्विक वातावरण में भगवान का ध्यान, भजन और स्मरण करने से अद्‌भुत आनन्द प्राप्त होता है, आजकल देर से उठने की आदत प्रचलित हो रही है, जो अच्छी बात नहीं है। सत्संगियों को अवश्य सूर्योदय के पूर्व उठ जाना चाहिए।

शौचविधि के बाद बाँया हाथ दस बार और दोनों हाथ एक साथ सात बार शुद्ध मिट्टी अथवा साबुन से धोने चाहिए।

तत्पश्चात् एक स्थान पर बैठकर दातुन अथवा ब्रश करना चाहिए, चारों और थूकने से गन्दगी फैलती है। घूमते-फिरते दाँत साफ करने का निषेध किया गया है। जीभ की सफाई हमेशा करनी चाहिए, क्योंकि जीभ का मैल विषैला होता है, उस पर बैठनेवाला जीवजन्तु मर जाता है, अतः हम दातुन की फाँक धोकर कूड़ेदान में डालें तथा जीभ-छोलनी धोकर रखें।

शास्त्रों में प्रातःस्नान की महिमा कही गई है। प्रातःकाल जब तक स्नान नहीं किया जाता, तब तक व्यक्ति अपवित्र अर्थात् सूतकी माना जाता है, स्नान के बाद ही व्यक्ति पूजन का अधिकारी बनता है। हमें हमेशा छाने हुए जल से ही स्नान करना चाहिए। नदी, तालाब, सरोवरों में स्नान करना तो श्रेष्ठ माना गया है। शीतल जल से स्नान करने से विशेष स्फूर्ति-चेतना का संचार होता है। स्नान के बाद धोये हुए वस्त्र पहनना चाहिये तथा एक उपवस्त्र ओढ़ना चाहिए। बिना उपवस्त्र ओढ़े पूजन करना निषिद्ध है। ऐसे व्यक्ति को नग्न ही समझा जाता है।

भगवान की पूजा के लिए पूरा बड़ा आसन धरती पर बिछाकर उस पर पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख बैठना चाहिए। शास्त्रों में पूर्व दिशा को देवदिशा कहा है। पश्चिम और दक्षिण दिशा पूजा के लिए निषिद्ध मानी गई हैं। दर्भ-निर्मित, ऊनी अथवा मृगचर्म का आसन श्रेष्ठ माना गया है। पूजा में अन्य प्रकार के आसन के उपयोग से फलसिद्धि नहीं होती।

सत्संगियों को पूजा के समय ललाट पर चन्दन का ऊर्ध्वपुंड्र-तिलक करके मध्य में कुमकुम का गोल टीका लगाना चाहिए। विद्यार्थी हो अथवा नौकरी-व्यवसाय करनेवाले सत्संगी, सभी को तिलक अवश्य करना चाहिए। मस्तक पर तिलक होने से श्रीहरि तथा महान संत कुसंग से हमारी रक्षा करते हैं। तिलक के कारण श्रीहरि की आज्ञा-विरुद्ध अनुचित कार्य करते हुए हमें संकोच होता है तथा तिलक न करने से हमारा मन शिथिल पड़ जाता है और अनुचित आचरण के लिए लालच पैदा होती है।

हमें तिलक को धर्म का प्रतीक मानना चाहिए तथा उसे धारण करने में लाज, शर्म या हिचकिचाहट नहीं करनी चाहिए। पाठशाला अथवा कॉलेज जानेवाले छात्रों को बचपन से ही तिलक लगाने का स्वभाव बन गया, तो उनके हृदय में अलौकिक-नैतिक साहस आ जाएगा। उनकी आध्यात्मिक

ताकत भी बढ़ेगी। श्रीहरि की इस आज्ञा का शूरवीर होकर पालन करें।

सधवा स्त्री को ललाट पर केवल कुमकुम का गोल टीका करना चाहिए। विधवा स्त्री के लिए यह वर्ज्य है। संभव हो तो भगवान की पूजा से बचे हुए चन्दन-कुमकुम से ही तिलक करना चाहिए। ऊर्ध्वपुंड्र तिलक सुन्दर और सौम्य ढंग से करना चाहिए। ऊर्ध्वपुंड्र तिलक श्रीहरि के चरण का प्रतीक है और गोल टीका भक्त की पूर्णता का प्रतीक है। अक्षरब्रह्म पूर्ण भक्त हैं, जो श्रीहरि के चरणारविन्द में निवास करते हैं । इस प्रकार ऊर्ध्वपुंड्र तिलक और टीका भक्त सहित भगवान की उपासना का प्रतीक है।

उसके बाद मानसी पूजा करनी चाहिए। सबसे पहले मन को स्थिर करके आत्मचिन्तन करें। प्रकट गुणातीत सत्पुरुष को अपनी आत्मा मानकर हृदय में श्रीहरि की स्थापना करें। इस प्रकार प्रकट सत्पुरुष का स्मरण करके दिन में पाँच समय की मानसी पूजा करनी चाहिए। जो इस प्रकार है : (1) प्रात:काल में भगवान को जगाना, (2) दोपहर 12.00 बजे भावपूर्वक भोजन करवाना, (3) दोपहर 4.00 बजे विश्राम से जगाना, (4) संध्या के समय आरती उतारना, (5) और रात को सोन से पूर्व श्रीहरि के स्मरण के साथ उनकी स्तुति करना। मानसी पूजा मन से ही कल्पित उत्तम पदार्थों द्वारा गद्‌गदभाव से की जानी चाहिए। (वच. ग.अं. 23)

तत्पश्चात् गुरु द्वारा प्राप्त भगवान की मूर्तियों की पूजा करनी चाहिए। जिसमें अक्षरपुरुषोत्तम की प्रधानमूर्ति के साथ भगतजी महाराज, शास्त्रीजी महाराज, योगीजी महाराज एवं प्रमुखस्वामी महाराज की मूर्तियाँ होनी चाहिए। (62) सबसे पहले आह्‌वान मंत्र से भगवान का आह्‌वान करके 'स्वामिनारायण' महामंत्र की माला फेरनी चाहिए। बाद में भगवान की महिमा का स्तोत्रगान करना, पाँच प्रदक्षिणा एवं पाँच साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करना तथा वचनामृत में दी गई श्रीहरि की आज्ञा के अनुसार किसी के भी मन, कर्म, वचन से हुए अपराध की क्षमा के लिए छठा दण्डवत् प्रणाम भी करें। दंडवत् प्रणाम के समय मस्तक, भृकुटि, नासिका, वक्ष:स्थल, जंघा, घुटने, हाथों की ताली और पैरों की उंगलियाँ, इन आठ अंगों का पृथ्वी पर स्पर्श होता है, इसीलिए इसको साष्टांग दण्डवत् प्रणाम कहते हैं। उसके बाद अपने सारे अपराधों की क्षमा माँगते प्रार्थना करनी चाहिए, उसके बाद

विसर्जन मंत्र बोलकर पूजाविधि की समाप्ति करनी चाहिए।

इस पूजा विधि के बाद 'वचनामृत' की आज्ञा के अनुसार 'शिक्षापत्री' का पाठ करना चाहिए, (वच. ग.अं. 1)। वृद्ध अथवा अशक्त लोग यदि पूजा न कर सकें, तो अपनी पूजा-सामग्री तथा मूर्तियाँ किसी अन्य हरिभक्त को सौंप देनी चाहिए। (61)

सभी सत्संगियों को हमेशा संध्या के समय मन्दिर जाकर भगवान के नाम का उच्च स्वर से कीर्तन करना चाहिए तथा उत्सव के दिन वाद्यों के साथ कीर्तन करना चाहिए। क्योंकि संध्या के समय असुरों का विशेष प्राबल्य रहता है, इसीलिए व्यावहारिक कार्यों के लिए वह समय निषिद्ध माना गया है। श्रीहरि तथा अक्षरब्रह्म गुणातीतानंद स्वामी अपने अनन्त मुक्तों के साथ आरती के समय उपस्थित रहते हैं, इसलिए हमें आरती में अवश्य उपस्थित रहना चाहिए। (63) इसके उपरांत देव तथा गुरु-दर्शन के लिए हमें कभी खाली हाथों नहीं जाना चाहिए। अपनी शक्ति के अनुसार धन-धान्य, फल-फूल आदि साथ लेकर ही जाना चाहिए। (37)

मन्दिर में जाकर भगवान की कथावार्ता सुनें, संस्कृत तथा प्राकृत भाषा में लिखे गए साम्प्रदायिक ग्रन्थों का नित्य अभ्यास करें तथा रात्रि के समय श्रीहरि की स्वाभाविक चेष्टा अर्थात् ध्यानचिन्तामणि और लीलाचिन्तामणि बोलकर मानसी में भगवान को शयन करवाएँ। स्वाभाविक चेष्टा के गान-श्रवण से अत्यधिक पुण्यफल प्राप्त होता है तथा भगवान की लीला एवं मूर्ति के चिन्तन से चित्त स्थिर होता है। दिनभर की गई व्यावहारिक प्रवृत्तियों के कर्मफल की निवृत्ति हो जाती है। इससे सुषुप्ति में भी भगवान का स्मरण बना रहता है, अतः प्रत्येक सत्संगी को विश्राम में जाने से पूर्व नियमित रूप से स्वाभाविक चेष्टा के पद अवश्य बोलना चाहिए।

यह सत्संगियों का नित्यक्रम है। अब 'शिक्षापत्री' में आचारशुद्धि के विषय में जो कुछ कहा गया है, उसका विचार करें।

अहिंसा

सभी शास्त्रों का एकमत सर्वत्र दिखाई देता है कि *'अहिंसा परमो धर्मः।'* अर्थात् अहिंसा हमारा परम धर्म है। मन, कर्म, वचन से किसी भी प्राणी की हिंसा करना वर्ज्य है। जूँ, खटमल, पिस्सू आदि त्रासदायी सूक्ष्म

जंतुओं की हिंसा करना मना किया गया है। यज्ञ के लिए हिंसा करना तथा यज्ञ में पशुओं की आहुति देना पाप है। जगन्नाथपुरी में श्रीहरि ने कहा था कि 'चौलाई की भाजी में भी जीव हैं, मैं उसे नहीं तोडूँगा।' स्त्री, धन अथवा राज्य की प्राप्ति के लिए भी सत्संगी को किसी मनुष्य की हिंसा नहीं करनी चाहिए। (11, 12, 13) उपरिचर वसु, समग्र पृथ्वी के राजा थे। फिर भी वे अहिंसापूर्ण आचरण करते थे। अतः ऐसा आचरण ही मोक्ष के लिए उपयोगी होता है। (वच. ग. प्र. 69) जिस वाणी से दूसरों के मन में पीड़ा हो, ऐसी वाणी बोलना भी एक प्रकार की हिंसा है।

सत्य

भक्त को हमेशा सत्य, प्रिय और हितकर वाणी बोलनी चाहिए। असत्य की शरण कभी नहीं लेनी चाहिए। कितना भी आर्थिक अथवा सामाजिक लाभ होता हो, परन्तु असत्य बोलना पाप है। श्रीहरि कहते हैं कि यदि अपना या किसी का द्रोह होता हो, तो सत्य का आग्रह छोड़ देना चाहिए। जैसे कोई कसाई कत्ल करने के इरादे से किसी गाय को पकड़ने के लिए उसके पीछे पड़ा हो, उस समय यदि वह गाय के विषय में पूछे, तो भी हमें कसाई को सही बात नहीं बतानी चाहिए। ऐसा झूठ यद्यपि पाप है, फिर भी गाय की प्राण-रक्षा के लिए यह 'झूठ' सबसे बड़ा पुण्य है! (26)

नैतिक आचरण

श्रीहरि ने सदाचार को धर्म कहा है। जिस कर्म को करने के बाद अच्छा फल मिलने की संभावना होती है, ऐसे कर्मों का आचरण करना चाहिए। परन्तु यदि वह कर्म धर्म रहित हो, तो ऐसे कर्म का आचरण नहीं करना चाहिए। जैसे कि भगवान के चरणों में पुष्प चढ़ाना अच्छा कर्म है, परन्तु यदि वे पुष्प चोरी के द्वारा प्राप्त किए गए हों, तो वह कर्म सत्कर्म नहीं कहलायेगा।

सत्कर्म के लिए भी चोरी नहीं करने का श्रीहरि का आदेश है। मन्दिर, देवता अथवा संतों की सेवा के लिए भी चोरी अथवा कोई अधार्मिक कर्म का आश्रय लेना उन्होंने स्पष्ट रूप से मना किया है।

क्योंकि धर्म सभी पुरुषार्थों को देनेवाला माध्यम है। अतः लौकिक लाभ तथा स्त्री धनादिक पदार्थों की लालच से हमें धर्म-त्याग नहीं करना चाहिए।

कदाचित पूर्वकालीन महापुरुषों ने कभी अधर्म का आचरण किया हो, तो हमें उनके आचरण को आदर्शरूप न मानकर उनके द्वारा हुए धर्माचरण को ही आदर्श मानना चाहिए तथा ऐसे आचरण का ही अनुसरण करना चाहिए।

अधर्ममय आहार-विहार तथा विचारों के सेवन से अधोगति होती है तथा धर्ममय आहार-विहार तथा आचार से चार पुरुषार्थों की सिद्धि होती है।

आत्मघात

पूर्वकाल में मनुष्य स्वर्गादि की प्राप्ति के लिए तीर्थस्थानों में जाकर आत्माघात करते थे; परन्तु वह भी एक प्रकार की हिंसा है। इसीलिए उसे निषिद्ध कहा गया है। यदि अनुचित कार्य हो जाए, तो प्रतिष्ठा की हानि होने के भय से भी विष खाकर, फाँसी लगाकर, कुँए में गिरकर अथवा पर्वत से गिरकर आत्मघात नहीं करना चाहिए। क्रोधवश अपना और दूसरों का अंग-भंग नहीं करना चाहिए। (14, 16) वेद में कहा है कि सभी प्रकार से आत्मा की रक्षा करनी चाहिए। केवल मनुष्य-शरीर के द्वारा ही मोक्ष की सिद्धि प्राप्त की जा सकती है। ऐसा मानव-शरीर हमें साढ़े तीन करोड़ प्राकृत प्रलय के बाद भगवान की भक्ति के उद्देश्य को लेकर मिलता है। ऐसे दुर्लभ मनुष्य-शरीर को आत्मघात करके गँवाना नहीं चाहिए।

मांसाहार का निषेध

मांसाहार करने के लिए जीव-हिंसा करनी पड़ती है। हिंसा सबसे बड़ा पाप है। श्रीहरि ने इसीलिए तो अहिंसक यज्ञों का प्रचलन किया था। हिंसक यज्ञों के बाद प्रसादी के रूप में मिलनेवाली मांस को भी नहीं खाना चाहिए। ऐसा करने में चाहे कैसी भी आपत्ति क्यों न आए, परन्तु अपने निश्चय पर अडिग रहना चाहिए। जिस देवमूर्ति के समक्ष मद्य-मांस का नैवेद्य अर्पित किया जाता हो, उस देव के प्रसाद को वर्ज्य समझना चाहिए। अनाज को भी बिना साफ किए तथा आटे को बिना छाने उपयोग में नहीं लेना चाहिए; क्योंकि उसमें अनेक सूक्ष्म जंतु रहने की संभावना होती है। बिना छाने पानी, दूध, घी, तेल आदि पदार्थों का उपयोग कभी नहीं करना चाहिए। वह मद्यमांस के समान ही है। जिस जल में सूक्ष्म जंतु हों, ऐसे जल से स्नान करना भी निषिद्ध है। (15, 22, 30)

मछुआरे को छः महीने तक मछली मारने से जितना पाप लगता है,

उतना पाप एक दिन भी बिना छाने हुए पानी पीनेवाले को लगता है। महाभारत में भी कहा गया है कि 'एक व्यक्ति प्रतिमास एक अश्वमेध यज्ञ करे और एक व्यक्ति मद्य-मांस का त्याग करे, तो दोनों समान पुण्य के अधिकारी हैं।'

मद्य-निषेध

मद्य अर्थात् शराब एक तमोगुणी पेय है। कहीं-कहीं देवताओं को मद्यपान कराया जाता है। परन्तु ऐसी प्रसादी को भी हमें कभी नहीं ग्रहण करनी चाहिए, यहाँ तक की शराब की गन्ध तक नहीं लेनी चाहिए।

शराब कई प्रकार की होती है, उसकी गन्ध तथा स्पर्श भी निषिद्ध कहा गया है। शास्त्रों में कहा है कि शराब की एक बूँद किसी जूते पर पड़ जाए, तो वह जूता जिस पशु के चमड़े का बना होगा, वह पशु भी यमलोक में जाता है। मनुस्मृति में मद्यपान को पाँच महापापों में स्थान दिया गया है। औषध भी यदि मद्य अथवा माँस से युक्त हो, तो उसका उपयोग नहीं करना चाहिए। जिस वैद्य अथवा डॉक्टर के आचरण को हम नहीं जानते, उसकी दी हुई औषधियों का सेवन हमें नहीं करना चाहिए। (15, 31)

आजकल लोग मांसाहार तथा मद्यपान को तथाकथित स्टेटस सिम्बोल मानने लगे हैं। व्यावसायिक, आर्थिक, एवं सामाजिक लाभ अथवा प्रतिष्ठा के लिए इसका सेवन अनिवार्य कहने की प्रथा चल पड़ी है। परन्तु यह घोर पाप है, जो कभी माफ नहीं किया जा सकता। सत्संगियों को तो किसी भी हालत में मांसाहार तथा मदिरापान नहीं करना चाहिए। विशेष शिक्षा के लिए, व्यापार के लिए अथवा किसी और प्रयोजनवश विदेश जानेवाले सत्संगियों को इस नियम का निष्ठापूर्वक पालन करना चाहिए। विदेशों में भी बिना मांसाहार तथा मद्यपान के भी पूर्ण शाकाहारी तथा निर्व्यसनी बनकर रहा जा सकता है, ऐसा बहुतों का अनुभव है। सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए कुसंग में पड़कर तथा लोभ-लालच में फँसकर इस नियम का भंग करने से व्यक्ति की अत्यन्त अधोगति होती है। अत: श्रीहरि की प्रसन्नता के लिए इस नियम का आचरण करना महत्त्वपूर्ण है।

चोरी

धर्मकार्य करने के लिए भी चोरी करना उचित नहीं है। जो लोग चोरी से धन प्राप्त करके दान-पुण्य करते हैं, वे नरक के अधिकारी होते हैं। उस दान

का पुण्य तो उसीको मिलता है, जिसका वह धन है। काष्ठ, पुष्प आदि सामान्य पदार्थ भी उसके मालिक की अनुमति के बिना लिए जाएँ, तो वह भी चोरी ही है। जानबूझकर चोरी का माल रखना, किसी की चीज़ माँगकर लाना और उसे वापस न लौटाना, यह भी चोरी का ही एक प्रकार है। चोरी की गणना पाँच महापापों में की गई है, इसलिए किसी भी प्रकार से चोरी नहीं करनी चाहिए।

लोगों की नज़र चुराकर किसी के घर, दूकान या खेत में प्रवेश करना नहीं चाहिए। जिस स्थान का कोई मालिक हो, उससे बिना पूछे उस स्थान का उपयोग करना अनुचित है।

व्यसन

भाँग, मुफर्रह, मअजून (मफर और माजम, अंग्रेजी में – मोरफाईन और मेरिजुआना), गांजा आदि नशीले पदार्थों तथा अफ़ीम, चरस और तम्बाकू का सेवन खाने में, पीने में, सूंघने में किसी तरह उपयोग में नहीं लेना चाहिए। कोई भी नशीला पदार्थ शरीर तथा मन को बुरी तरह उत्तेजित करता है। वह मनुष्य को अपना गुलाम बना देता है। व्यर्थ के खर्च के बोझ के तले दबा देता है। गुणातीतानन्द स्वामी कहते थे कि 'कुसंगी का फैल में सत्संगी का गुजारा' व्यसनी व्यक्ति व्यसन में जितना खर्च करता है, उससे तो सत्संगी व्यक्ति का जीवननिर्वाह हो जाता है।

जुआ भी एक बड़ा व्यसन है, भले ही वह ताश, रेस, सट्टा या आँकड़े का खेल ही क्यों न हो। जुआ के व्यसन से ही युधिष्ठिर ने सारा राज्य खो दिया था। यह व्यसन तृष्णा को बढ़ाता है और मनुष्य को तबाह कर देता है, अन्याय या पाप से कमाए हुए धन से कोई भी सुखी नहीं हो सकता। इसलिए इन व्यसनों से बचकर चलना चाहिए।

इसके उपरांत नक़्क़ाल, स्वाँग, नाटक, सिनेमा आदि भी व्यसन का ही काम करते हैं, अतः ऐसे वीभत्स चित्रों को देखना भी निषिद्ध है। असावधानीवश यदि कोई व्यसन पड़ गया हो, तो संत के सत्संग से उसका त्याग कर देना चाहिए।

व्यभिचार

परस्त्री के साथ मन, वचन, कर्म से दुर्व्यवहार करना ही व्यभिचार है। दुर्भावना के साथ परस्त्री की ओर ताकना भी नहीं चाहिए। ब्रह्मचर्य सबसे बड़ा

सद्‌गुण है, उससे भगवान बहुत प्रसन्न होते हैं। आज के युग में जब कि स्त्री-पुरुष मुक्त व्यवहार कर रहे हैं और स्वतंत्रता ले रहे हैं, उससे कई प्रकार के दोष तथा विकृतियाँ पैदा होती हैं। स्वाभाविक रूप से इस मर्यादा को लांघनेवाले का अध:पतन होता है। इसलिए ब्रह्मचर्य के नियमों का निष्ठापूर्वक पालन करना आवश्यक है। सत्संगी को परस्त्री की ओर गलत दृष्टि से देखना भी नहीं चाहिए और धर्ममर्यादा का पालन करना चाहिए। (18)

आहार विवेक

श्रीहरि ने वर्णाश्रम धर्म का अच्छी तरह निरूपण किया है। उसकी उपेक्षा करनेवाले लोग किसी भी जाति के लोगों के हाथ से पकाये हुए अन्न का भोजन करते हैं, उससे कई रोग पैदा होते हैं, जिन लोगों के हाथों से पकाया हुआ भोजन और जिनके पात्र का जल निषिद्ध समझा गया है, उसे भगवान का नैवेद्य होने पर भी तथा प्रसादी होने पर भी उसका स्वीकार नहीं करना चाहिए।

बाज़ार में, दूकानों में और हॉटेलों में बिकनेवाले खाद्य पदार्थों में इस्तेमाल किए गए घी, दूध, तेल, पानी आदि चीज़ें अशुद्ध होती हैं तथा उनमें कई प्रकार की मिलावटें भी होती हैं, इसीलिए वे पदार्थ खाने-पीने योग्य नहीं होते। प्याज और लहसुन तो अभक्ष्य पदार्थ ही हैं, क्योंकि उनसे तमोगुण बढ़ता है। शास्त्रों में कहा गया है कि 'आहारशुद्धि से सत्त्वशुद्धि होती है और सत्त्वशुद्धि से ब्रह्म का दर्शन होता है।' इस प्रकार आहार शुद्धि का बड़ा माहात्म्य है। (19) जहाँ कहीं और जैसा-तैसा खाने से बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है और भ्रष्ट बुद्धिवाला व्यक्ति अच्छा सत्संगी नहीं बन सकता।

धर्माचरण

हमें अपने-अपने वर्णाश्रम धर्म को नहीं छोड़ना चाहिए। ब्राह्मणों को शम, दम, क्षमा और संतोष आदि गुणों का पालन करना चाहिए, क्षत्रियों को वीरता, धीरता आदि गुणों से युक्त रहना चाहिए, वैश्यों को व्यापार, खेती और सूद आदि से एवं शूद्रों को ब्राह्मण आदि तीन वर्णों की सेवा के द्वारा आजीविका चलानी चाहिए। (89, 90)

परधर्म, पाखण्ड धर्म या कल्पित धर्म का आचरण कभी नहीं करना चाहिए। ब्राह्मण यदि क्षत्रिय धर्म का आचरण करता है, तो वह परधर्म ही है,

त्यागी अपने धर्म का आचरण छोड़कर यदि गृहस्थ धर्म का पालन करता है, तो वह भी परधर्माचरण कहा जाएगा। अपने ही वर्णधर्म अथवा आश्रम धर्म का आचरण करने का गीता ने भी आदेश दिया है। धर्ममर्यादा सबका कल्याण करती है, उसका खण्डन करनेवाला आचरण पाखण्ड है। वेदविरुद्ध धर्म नास्तिक धर्म है, कुछ कल्पित सम्प्रदाय एवं गुरु ऐसे भी हैं, जिन्हें वैदिक धर्म एवं उपासना या सनातन धर्म की मर्यादा मान्य नहीं है, उनके आचरण का अनुसरण कभी नहीं करना चाहिए।

शौचादिक विवेक

शतानन्द मुनि सत्संगिजीवन ग्रंथ में कहते हैं कि 'दूसरों के घर के आँगन, राजकीय स्थान, यवनों के स्थान, पुलिस अथवा चपरासियों के और लौकिक निषिद्ध स्थानों में कभी मल-मूत्र का त्याग न करें। गोशाला, जीर्ण देवालय, जलाशय, रास्ते, बोये हुए खेत, वृक्ष की छाया, फुलवारी, बगीचे, भस्म, बिल-बाँबी आदि स्थानों पर मल-मूत्र का त्याग करना और थूकना धर्मशास्त्र की आज्ञा के विरुद्ध है।'

वस्त्रपरिधान में विवेक

जिन वस्त्रों के पहनने पर अपने अंग-उपांग दिखाई दें, ऐसे महीन-पारदर्शक एवं छोटे नाप के वस्त्र नहीं पहनने चाहिए। मन को उत्तेजित एवं कलुषित करनेवाली पश्चिम की परिधान शैली का अन्धानुकरण हमें नहीं करना चाहिए। (38)

नैमित्तिक कर्म

ग्रहण, स्नान, जन्म-मरण, शौच आदि नैमित्तिक कर्म हैं। वे दैनिक कर्म नहीं हैं, उनके नियमों का भी पालन करना आवश्यक है।

ग्रहण

सूर्यग्रहण तथा चन्द्रग्रहण के समय सत्संगियों को अपने सारे दैहिक या व्यावहारिक कामकाज छोड़कर, पवित्र होकर एक स्थान पर बैठकर 'स्वामिनारायण' मन्त्र का जाप करना चाहिए। ग्रहण के दौरान भजन के अतिरिक्त अन्य कोई काम न करें, वस्त्रादि को न छुएँ। ग्रहण का वेध लगने के पहले रोटी-दाल, चावल आदि पकाए हुए पदार्थों को घर से दूर कर दें। अचार, दूध, घी, तेल, छाछ आदि पदार्थों में तिल अथवा दर्भ रख दें, ताकि

ग्रहण का दोष उनमें न लगने पाए।

सूर्यग्रहण के चार प्रहर पहले एवं चन्द्रग्रहण के तीन प्रहर पहले वेध लगता है, उस समय भोजन करना निषिद्ध है। ग्रहण के छूटने पर वस्त्र सहित स्नान करके गृहस्थों को यथाशक्ति दान करना चाहिए और त्यागियों को भगवान की पूजा करनी चाहिए। (86, 87)

आपद् धर्म

आपद्-धर्म अर्थात् मुसीबत के समय में पालन करने योग्य आचरण। जैसे कि अत्यन्त बीमार व्यक्ति को व्रत के दिन भी भोजन करने की छूट है। परन्तु इस आदेश के आधार पर सामान्य बीमारी में भोजन की छूट नहीं देनी चाहिए। इस प्रकार का आदेश देते हुए श्रीहरि कहते हैं कि शास्त्रों में जो आपद्-धर्म कहा गया है, उस आपद्-धर्म को हमें सामान्य मुसीबतों में स्वीकार नहीं कर लेना चाहिए। (48) महाभारत में कहा गया है कि देह के नाश होने की नौबत आ जाए, तभी आपद्-धर्म का सहारा लेना चाहिए तथा देशकाल मिट जाने पर पूर्ववत् आचरण करना चाहिए।

छान्दोग्य उपनिषद् में उषस्ति ऋषि की एक कथा है : ऋषि को कई दिनों तक भोजन नहीं मिला था, मौत नजदीक थी। हारकर वे एक महावत के घर पहुँचे, वह सड़े हुए उड़द उबालकर खा रहा था। देहनिर्वाह के लिए उषस्ति ने उसके जूठे उड़द लेकर खा लिए। परन्तु अन्त में जब महावत ने अपना जूठा पानी दिया तो वे बोले, 'मेरी देह अब इसी से टिक जाएगी, अतः तुम्हारा जूठा पानी मैं नहीं पीऊँगा।' ऐसी स्थिति को आपद्-धर्म कहते हैं।

आजकल धर्माचरण में शिथिलता आने से लोग आपद्-धर्म को जो कि कुछ समय के लिए होता है, सामान्य समझकर विशेष छूट ले रहे हैं, जो गलत है।

प्रायश्चित्त

श्रीहरि प्रबोधित सदाचार के विभिन्न रूप हमने संक्षेप में देखे। परन्तु सदाचारों की मर्यादा का उल्लंघन जाने-अनजाने में हुआ करता है। उस समय शुद्धि के लिए तथा दोष से छुटकारा पाने के लिए प्रायश्चित करना चाहिए। 'सत्संगिजीवन' ग्रंथ में 'प्रायश्चित्त विधि' का विवरण दिया गया है। तथा श्रीहरि

के धारक गुणातीत सत्पुरुष के वचन भी धर्म ही कहा जाता है। अत: उनके निर्णयानुसार प्रायश्चित्त करने पर पाप से मुक्ति होती है। यह प्रायश्चित्त श्रद्धा और विश्वासपूर्वक किया जाना चाहिए। प्रायश्चित्त करने के बाद भक्त पूर्ववत् शुद्ध हो जाता है, ऐसे भक्त को कभी पापी नहीं समझना चाहिए। (92)

2. सगराम

गुजरात में सन् 1869 में भयंकर अकाल पड़ा था। न तो अमीरों के घर में अन्न था, न ही व्यापारियों की दुकानों में अनाज बचा था। ऐसे समय में गरीबों की तो बात ही क्या? वे तो दाने-दाने के मुहताज थे। ऐसे समय पर सुरेन्द्रनगर जिले के लीमली गाँव के वाघरी सगराम को दो जून खाने के भी लाले पड़ने लगे। उसने सोचा कि मुक्तानन्द स्वामी की शरण में सूरत जाकर कुछ रास्ता निकाला जा सकता है। वह अपनी पत्नी के साथ सूरत की ओर पैदल ही निकल पड़ा।

अचानक मार्ग में उसका पैर किसी पदार्थ के साथ टकराया। देखा तो एक सेर वजन का चाँदी का तोड़ा![1] पलभर के लिए सगराम स्तब्ध हो गया। उसको धन की अत्यन्त आवश्यकता थी। परन्तु उसका मन सत्संग के रंग से रंग गया था। पराई चीज़ को छूने का विचार भी वह कैसा कर सकता था? उसने सोचा कि समय विपरीत चल रहा है, अपनी आर्थिक स्थिति अत्यन्त कंगाल है; संभव है, मेरी पत्नी का मन यह जोड़ा देखकर विचलित हो जाए! उसने तुरन्त अपने पैर से उस तोड़े पर धूल डाल दी।

पीछे आ रही उसकी पत्नी ने सगराम को जमीन पर कुछ करते हुए देखा, तो निकट आकर पूछने लगी। सगराम ने उसके पास बिना कुछ छुपाए सबकुछ बता दिया, तब पत्नी ने पूछा कि 'आपने उस गहने पर धूल क्यों डाली?'

'यदि उसे देखकर तुम्हारी नियत बदल जाए, तो उसी भय के कारण मैंने ऐसा किया था।' सगराम ने कहा।

'मैं तो पराये धन को धूल ही समझती हूँ।' सगराम की पत्नी ने कहा। सगराम के चेहरे पर इमानदारी का खुमार झलकने लगा।

1. स्त्री के पैर में पहनने का आभूषण।

आगे चलकर दोनों ने देखा कि कुछ लोग उसी गहने को खोजते हुए आ रहे थे। उन्होंने दरिद्र दिख रहे सगराम से पूछा, 'तुमने रास्ते में पड़ा हमारा चांदी का तोड़ा कहीं देखा?'

'जी, हमने आपके गहने को वहीं दूर पड़ा हुआ देखा है।' सगराम ने इतना कहकर निशानी भी बताई। परन्तु उन लोगों को भरोसा नहीं हुआ। वे सगराम को साथ लेकर उस स्थान पर पहुँचे; जहाँ धूल की ढेरी को हटाते ही तोड़ा दिखाई दिया। आनेवाले लोग सगराम की इमानदारी से दंग रह गए। उन लोगों ने कुछ इनाम देना चाहा, परन्तु सगराम ने नहीं लिया और विनयपूर्वक कहा, 'भाइयों, हम तो भगवान स्वामिनारायण के भक्त हैं, अपना धर्म संभालकर चलते हैं।'

दोनों जब सूरत पहुँचे, तो मुक्तानन्द स्वामी सगराम को देखकर प्रसन्न हो गए। स्वामी को सगराम पर पूरा भरोसा था, इसलिए उनकी सिफारिश से एक हरिभक्त के घर सगराम को नौकरी मिल गई। समय के सुधरते ही दोनों अपने गाँव की ओर चल दिए।

मुक्तानन्द स्वामी ने सगराम को वर्तमान धारण करवाकर सत्संग में शामिल किया था। भोले दिल का सगराम, स्वामी की आज्ञा से ब्राह्मण से भी

अधिक आचार नियमों का पालन करता था। कभी असावधानीवश परस्त्री का स्पर्श भी हो जाए, तो वह स्नान करके उपवास कर लेता था।

एकबार भावनगर के महाराजा विजयसिंहजी को किसी ने बताया कि ये स्वामिनारायण तो वाघरी को भी वैष्णव बना देते हैं। यह सुनकर महाराजा को बहुत आश्चर्य हुआ। उन्होंने सगराम को मिलने के लिए अपने राजमहल में बुलाया। वहाँ जाकर सगराम नम्रतापूर्वक महाराजा के चरणों के पास बैठ गया। उन्होंने पूछा, 'सगराम! तुम्हें, स्वामिनारायण में कोई चमत्कार दिखाई दिया है क्या?'

'मालिक! क्या आपको याद है कि कभी आपने अपने महल में बुलाकर किसी वाघरी के साथ इस प्रकार बातचीत की हो? महाराज, मेरे जैसे साधारण आदमी को आपने बुलावा भेजा, आपके पास मुझे इस तरह बिठाकर आप स्वयं मेरे साथ बातचीत कर रहे हैं। क्या इससे बड़ा कोई चमत्कार हो सकता है? हम तो ठहरे वाघरी। निरे पशु के समान हम जीते थे। परन्तु भगवान स्वामिनारायण ने हमें पवित्र किया, धर्म-नियम तथा सदाचार की शिक्षा दी। हम पशु से मानव बने, क्या यह चमत्कार नहीं है?' सगराम के सहज उत्तर से महाराजा बहुत ही प्रसन्न हुए।

सगराम की दंभरहित भक्ति से श्रीहरि उस पर प्रसन्न रहते थे। सगराम के हृदय की भावना थी कि कभी श्रीहरि मेरी झोपड़ी को पावन करें।

श्रीहरि एक रात अचानक उसके घर जा पहुँचे। सगराम की खुशी का ठिकाना न रहा। उसकी झोपड़ी में तो खड़े रहने के लिए भी जगह नहीं थी, श्रीहरि को एक छोटी सी मचिया पर बिठाया और वह नाचते-कूदते गाने लगा कि देखो मेरी झोपड़ी में आज हाथी घुस गया है! वाघरी के घर में भगवान भला क्यों आयेंगे?

उसकी स्त्री भी आनंदित होकर नाचने लगी, भगवान ने उसके घर भोजन किया, वास्तव में वे भक्त के भाव को देखते हैं, उसके कुल को नहीं।

सत्संग के कारण सगराम विद्वानों के साथ भी प्रश्नोत्तरी में टक्कर ले सकता था। शियाणी के शिवराम भट्ट को उसीने पराजित किया था। भट्टजी आगे चलकर श्रीहरि के पास त्यागी बनकर रह गए थे।

3. व्यापकानन्द स्वामी

सौराष्ट्र के फणेणी गाँव में रामानन्द स्वामी का देहोत्सर्ग हो चुका था। परन्तु उनका नाम सुनकर उत्तर भारत के झरणा-परणा गाँव से एक मुमुक्षु शीतलदास उनके दर्शन के लिए आ पहुँचे। जब उन्होंने स्वामी के देह-विलय की खबर सुनी, तो उनका हृदय आहत हो गया। वे वापस लौटने को सोच रहे थे।

उस समय श्रीहरि ने उनको रामानन्द स्वामी के दर्शन करा देने का आश्वासन दिया। वे, श्रीहरि के आग्रह से उन्हीं के पास ठहर गए। एकबार श्रीहरि ने उनको 'स्वामिनारायण' मंत्र की धुन करने का आदेश दिया। उन्होंने जब यह मंत्र पढ़ा, तो श्रीहरि की कृपा से उन्हें समाधि लग गई। समाधि में उनको दिव्य आनन्द का अनुभव हुआ। समाधि से जाग्रत होते ही वे अपने दिव्य दर्शन के अनुभव की बात करने लगे, 'तेजोमय अक्षरधाम में मुझे भव्य सिंहासन पर श्रीहरि का दर्शन हुआ। राम-कृष्ण आदि अवतारों के साथ रामानन्द स्वामी भी उनके समक्ष प्रणाम करके खड़े थे और उनकी स्तुति कर रहे थे। मैंने श्रीहरि की पूजा की, परन्तु उनके साथ सभी मुक्तों की भी पूजा करने की मेरी इच्छा हुई। परन्तु ऐसा करना असंभव था।

उस समय श्रीहरि ने मुझसे कहा, 'तुम संकल्प करो कि राम-कृष्ण आदि अवतार अथवा रामानन्द स्वामी पूर्ण पुरुषोत्तम हों, तो मेरे अनेक रूप हो जाएँ और मैं सबकी एक साथ पूजा करूँ, मैंने तदनुसार संकल्प किया, परन्तु कुछ नहीं हुआ।'

परन्तु जब उनकी सूचना से मैंने पुनः संकल्प किया कि 'यदि सहजानंद स्वामी पूर्ण पुरुषोत्तम हों, तो मेरे अनेक रूप हो जाएँ।' तो उसी पल मेरे असंख्य रूप हो गए और मैंने अपनी इच्छानुसार सभी मुक्तों की एक साथ पूजा की। उस समय रामानन्द स्वामी ने मुझे कहा कि 'ये सहजानन्द स्वामी सभी अवतारों के मूल कारण हैं। हम सब तो उनके दास हैं।' उस ब्रह्मधाम की क्या अद्‌भुत शोभा थी और क्या श्रीहरि की तेजस्वी मूर्ति! मैं तो वहाँ की शोभा का वर्णन तक नहीं कर सकता।'

शीतलदास की बात सुनकर सारी सभा स्तब्ध रह गई! उस समय अन्य

कई हरिभक्तों को समाधि में यही दिव्य दर्शन का अनुभव होने लगा। शीतलदास ने श्रीहरि से भागवती दीक्षा ग्रहण की और उनका नाम 'व्यापकानन्द स्वामी' रखा गया।

एकबार वे विचरण करते हुए सुरेन्द्रनगर जिले के थानगढ़ गाँव के वासुकिनाग के प्राचीन मन्दिर में ठहरे थे। उस मन्दिर में स्वामी की दृष्टि अचानक गुम्बद की ओर गई। वहाँ नृत्य करनेवाली अप्सराओं की मूर्तियाँ तराशकर लगाई गई थीं। स्वामी की आँखें वहीं पर चिपक गईं। सारी पुतलियाँ अचानक सजीव होकर नाचने लगीं । स्वामी सोचने लगे कि श्रीहरि ने छोटी बड़ी आज्ञाएँ जो दी हैं, वे कितनी महत्त्वपूर्ण हैं कि 'साधुओं को स्त्री की मूर्ति या प्रतिमा नहीं देखनी चाहिए।' वे श्रीहरि के आदेश में रहनेवाले गहरे मर्म को पाकर वचन-पालन की दृढ़ता करने लगे।

किसी समय स्वामी विचरण करते हुए बोटाद पधारे। यहाँ उन्होंने देखा कि हमीर खाचर के दरबार में कुहराम मचा था। पूछताछ करने पर

पता चला कि बापू की घोड़ी मर गई है, जो उनको अपने पुत्र की तरह प्यारी थी। स्वामी को यह देखकर अकारण ही करुणा उभर आई। उन्होंने 'स्वामिनारायण' मन्त्रोच्चार के साथ जल की अंजलि भरके मृत घोड़ी पर छिड़क दी और एक मच्छर को मारकर उसके जीव को घोड़ी के शरीर में प्रवेश करा दिया। उसी पल घोड़ी हिनहिनाती हुई उठ बैठी! चारों ओर आनन्द की लहर फैल गई, बापू तो स्वामी का जय-जयकार करते हुए उनके चरणों में गिर पड़े।

कुछ दिनों के बाद वे श्रीहरि के पास झींझावदर गाँव में पधारे। परन्तु श्रीहरि ने उनकी ओर देखा तक नहीं। परन्तु वहाँ उपस्थित खीमबाई को कहा, 'आज तो हमारे प्रभु पधारे हैं। उनके लिए थाल-भोजन की व्यवस्था करना।'

खीमबाई ने विस्मित होकर पूछा, 'महाराज! आपके भी कोई प्रभु हैं?'

'हैं न! व्यापकानन्द स्वामी हमारे प्रभु हैं।' श्रीहरि ने हँसते हुए कहा। यह सुनकर व्यापकानन्द स्वामी दु:खी हो गए और पूछने लगे, 'महाराज ! मैं तो आपका दास हूँ, मुझे आप अपना प्रभु क्यों बताते हो?'

'अरे! आप तो मुर्दे को जिन्दा करते हैं, इसलिए आप हमारे प्रभु नहीं तो और क्या लगते हैं?' महाराज ने कहा।

स्वामी प्रणाम करके कहने लगे, 'महाराज! मुर्दा घोड़ी पर मचे हुए कोहराम को सुनकर मुझे बापू पर दया आ गई, इसीलिए एक मच्छर की देह से जीव निकालकर दूसरी देह में डाल दिया। बस इतना ही किया। अब इसमें मेरी कोई गलती हो गई हो तो क्षमा कीजियेगा।'

अब श्रीहरि उनको समझाने लगे, 'स्वामी! हम मुर्दे को जिन्दा करने के लिए इस धरती पर नहीं आये हैं। हम तो जीव मात्र को आत्मा और परमात्मा का यथार्थ ज्ञान देने के लिए आए हैं। हमें तो सभी का अज्ञान मिटाकर उन्हें अक्षरधाम तक पहुँचाना है। आज तो हमारी इच्छा और कृपा से घोड़ी जीवित हो गई, परन्तु यदि किसी राजा के मरे हुए कुमार को आप जीवित नहीं कर पाएँगे, तो वह आपको मरवा डालेगा। इसीलिए आप उपदेश देना, परन्तु चमत्कार दिखाने की झंझट में मत उलझना।'

स्वामी को यह सुनकर बहुत पछतावा हुआ। उन्होंने गद्‌गद कण्ठ से श्रीहरि की क्षमा-याचना की, तत्पश्चात् वे गढ़पुर पधारे।

4. गोडी

(राग पूरब, पद-1)

सन्त समागम कीजे हो निशदिन... सन्त
मान तजी सन्तन के मुख से, प्रेम-सुधारस पीजे... हो निश०
अन्तर कपट मेटके अपनो, ले उनकुं मन दीजे... हो निश०
भवदु:ख टळे, बळे सब दुष्कृत, सब विधि कारज सीजे... हो निश०
ब्रह्मानन्द कहे सन्त की सोबत, जन्म सुफल करी लीजे... हो निश०

(हमेशा सत्संग करते रहो, मान-अभिमान छोड़कर संतों के मुख से प्रेमामृतरस पीते रहो, कपट को मिटाकर मन प्रभु में लगा दो, ऐसा करने से संसार के सारे दु:ख मिट जाएँगे, सारे पाप जलकर भस्म हो जाएँगे, सारे कार्य सिद्ध हो जाएँगे। ब्रह्मानन्द कहते हैं कि सन्तों के सत्संग से अपना जन्म सफल कर लो।)

पद-2

सन्त परम हितकारी जगत मांही... सन्त
प्रभुपद प्रकट करावत प्रीति, भरम मिटावत भारी... जगत०
परम कृपालु सकल जीवन पर, हरिसम सब दु:खहारी... जगत०
त्रिगुणातीत फिरत तनु त्यागी, रीत जगत से न्यारी... जगत०
ब्रह्मानन्द कहे सन्त की सोबत, मिलत है प्रकट मुरारि... जगत०

(जगत में हमारे परम हितैषी संत ही हैं। वे ही भगवान के प्रति हमारे मन में प्रेम पैदा करवाते हैं, वे ही हमारे सारे भ्रम मिटाते हैं, वे प्राणीमात्र पर कृपा बरसाते हैं, भगवान की तरह वे हमारे शोक-दु:ख हरते हैं। उनकी पद्धति दुनिया से निराली होती है, त्रिगुणातीत संत अपनी देह की आसक्ति को छोड़कर विश्वभर में विचरण करते हैं, ब्रह्मानन्द कहते हैं कि सन्त के सत्संग से परमात्मा प्रत्यक्ष रूप से मिलते हैं।)

5. धुन

राम कृष्ण गोविन्द! जय जय गोविन्द !
हरे राम गोविन्द! जय जय गोविन्द !
नारायण हरे! स्वामिनारायण हरे !

स्वामिनारायण हरे! स्वामिनारायण हरे !
कृष्णदेव हरे! जय जय कृष्णदेव हरे !
जय जय कृष्णदेव हरे! जय जय कृष्णदेव हरे !
वासुदेव हरे! जय जय वासुदेव हरे !
जय जय वासुदेव हरे! जय जय वासुदेव हरे !
वासुदेव गोविन्द! जय जय वासुदेव गोविन्द !
जय जय वासुदेव गोविन्द! जय जय वासुदेव गोविन्द !
राधे गोविन्द! जय राधे गोविन्द !
वृन्दावनचन्द्र! जय राधे गोविन्द !
माधवमुकुन्द! जय माधवमुकुन्द !
आनन्दकन्द! जय माधवमुकुन्द !
स्वामिनारायण... स्वामिनारायण... स्वामिनारायण...

6. श्रीस्वामिनारायणाष्टकम्[2]

अनन्त-कोटीन्दु-रविप्रकाशे
धाम्न्यक्षरे मूर्तिमताक्षरेण ।
सार्धं स्थितं मुक्तगणावृतं च
श्री स्वामिनारायणमानमामि ॥ 1 ॥

अनन्त कोटि चन्द्र और सूर्य के समान प्रकाशमान, तेजोमय अक्षरधाम में अनादि मूर्तिमान अक्षर और अनन्त मुक्तों से घिरे हुए श्री स्वामिनारायण भगवान को मैं प्रणाम करता हूँ। (1)

ब्रह्मादिसम्प्रार्थनया पृथिव्यां
जातं समुक्तं च सहाक्षरं च ।
सर्वावतारेष्ववतारिणं त्वां
श्री स्वामिनारायणमानमामि ॥ 2 ॥

ब्रह्मा आदि देवताओं की प्रार्थना से पृथ्वी पर अक्षर (स्वामी श्री

2. शास्त्रीजी महाराज कहते थे कि इस अष्टक का एक बार भी जो व्यक्ति पाठ करेगा उसको एक अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होगा। अत: प्रत्येक हरिभक्त को सन्ध्या आरती के बाद इसका पाठ करना चाहिए।

गुणातीतानन्दजी) और मुक्तों (स्वामीश्री गोपालानन्दजी आदि) के साथ प्रकट हुए, सभी अवतारों के अवतारी भगवान श्री स्वामिनारायण को मैं प्रणाम करता हूँ। (2)

दुष्प्राप्यमन्यैः कठिनैरुपायैः
समाधिसौख्यं हठयोगमुख्यैः ।
निजाश्रितेभ्यो ददतं दयालुं
श्री स्वामिनारायणमानमामि ॥ 3 ॥

हठयोग आदि कठिन उपायों द्वारा भी असाध्य ऐसी समाधि का सुख केवल अपनी कृपा के द्वारा अपने आश्रितजनों को आसानी से देनेवाले प्रभु स्वामिनारायण को मैं प्रणाम करता हूँ। (3)

लोकोत्तरै र्भक्तजनाँश्चरित्रै
राह्लादयन्तं च भुवि भ्रमन्तम् ।
यज्ञाँश्च तन्वानमपारसत्त्वं
श्री स्वामिनारायणमानमामि ॥ 4 ॥

अपने अलौकिक दिव्य चरित्रों के द्वारा भक्तजनों को आनन्द देनेवाले, पृथ्वी पर सदा विचरण करते हुए, अनेक यज्ञों का प्रचार करनेवाले, अपार पराक्रमी श्री स्वामिनारायण भगवान को मैं प्रणाम करता हूँ। (4)

एकान्तिकं स्थापयितुं धरायां
धर्मं प्रकुर्वन्तममूल्यवार्ताः ।
वचः सुधाश्च प्रकीरन्तमूर्व्यां
श्री स्वामिनारायणमानमामि ॥ 5 ॥

पृथ्वी पर एकान्तिक धर्म की स्थापना करने के लिए, अमूल्य कथावार्ताओं के द्वारा उपदेश देनेवाले, वचनामृतरूपी अमृतवृष्टि करनेवाले भगवान स्वामिनारायण को मैं प्रणाम करता हूँ। (5)

विश्वेशभक्तिं सुकरां विधातुं
बृहन्ति रम्याणि महीतलेऽस्मिन् ।
देवालयान्याशु विनिर्मिमाणं
श्री स्वामिनारायणमानमामि ॥ 6 ॥

समस्त विश्व के परमात्मा पुरुषोत्तम नारायण की भक्ति, सब लोग

आसानी से कर सकें, इसलिए इस भूमण्डल पर बड़े-बड़े रमणीय दिव्य देवालय शीघ्रातिशीघ्र निर्माण करनेवाले श्री स्वामिनारायण भगवान को मैं प्रणाम करता हूँ। (6)

विनाशकं संसृतिबन्धनानां
मनुष्यकल्याणकरं महिष्ठम् ।
प्रवर्तयन्तं भुवि सम्प्रदायं
श्री स्वामिनारायणमानमामि ॥ 7 ॥

संसार के बन्धनों का नाश करनेवाले और मानवमात्र का कल्याण करनेवाले महान सम्प्रदाय को पृथ्वी पर स्थापित करनेवाले भगवान स्वामिनारायण को मैं प्रणाम करता हूँ। (7)

सदैव सारंगपुरस्य रम्ये
सुमन्दिरे अक्षरधामतुल्ये ।
सहाक्षरं मुक्तयुतं वसन्तं
श्री स्वामिनारायणमानमामि ॥ 8 ॥

साक्षात् अक्षरधाम के समान सारंगपुर के सुन्दर मन्दिर में अनादि अक्षरब्रह्म श्री गुणातीतानन्द स्वामी तथा महामुक्त श्री गोपालानन्द स्वामी के साथ सदा विराजमान भगवान स्वामिनारायण भगवान को मैं प्रणाम करता हूँ। (8)

7. प्रार्थना

निर्विकल्प उत्तम अति, निश्चय[3] तव घनश्याम,
माहात्म्यज्ञानयुक्त भक्ति[4] तव, एकान्तिक सुखधाम ॥ १ ॥
मोहि में तव भक्तपनों, तामें कोई प्रकार,
दोष[5] न रहे कोई जात को, सुनियो धर्मकुमार ॥ २ ॥
तुम्हारो तव हरिभक्त को, द्रोह[6] कबु न होय,
एकान्तिक तव दास को, दीजे समागम[7] मोय ॥ ३ ॥
नाथ! निरन्तर दर्श[8] तव, तव दासन को दास,[9]
एहि मागुं करी विनय हरि! सदा राखियो पास ॥ ४ ॥
हे कृपालो! हे भक्तपते! भक्तवत्सल! सुनो बात,
दयासिन्धो! स्तवन करी, मागुं वस्तु सात ॥ ५ ॥

सहजानन्द महाराज के, सब सत्संगी सुजाण,
ताकुं होय दृढ़ वर्तनो, शिक्षापत्री प्रमाण ॥ ६ ॥
सो पत्री में अति बड़े, नियम एकादश जोय,
ताकि विक्ति करत हुं, सुनियो सब चित्त प्रोय ॥ ७ ॥
हिंसा[11] न करनी जन्तु की परत्रियासंग[12] को त्याग,
मांस[13] न खावत मद्यकुं,[14] पीबत नहीं बड़ भाँग्य ॥ ८ ॥
विधवाकुं[15] स्पर्शत नहीं, करत न आत्मघात,[16]
चोरी[17] न करनी काहु की, कलंक[18] न कोईकुं लगात ॥ ९ ॥
निन्दत[19] नहि कोई देवकुं, बिन खपतों[20] नहि खात,
विमुख जीव के वदनसे,[21] कथा सुनी नहीं जात ॥ १० ॥
एही धर्म के नियम में, बरतो सब हरिदास,
भजो श्री सहजानन्दपद, छोड़ी ओर सब आस ॥ ११ ॥
रही एकादश नियम में, करो श्रीहरिपद-प्रीत,
प्रेमानन्द कहे धाम में, जाओ नि:शंक जग जीत ॥ १२ ॥

– साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करते समय बोले जाते श्लोक –

कृपा करो मुज उपरे, सुखनिधि सहजानन्द,
गुण तमारा गाववा, बुद्धि आपजो सुखकन्द ॥ १ ॥
अक्षरपुरुषोत्तम अहीं, पृथ्वी उपर पधारिया,
अनेक जीव उद्धारवा, मनुष्यतन धारी रह्या ॥ २ ॥

8. रत्नाकर और चार भाई

एक गाँव में चार भाई रहते थे। चारों की आपसी एकता अनन्य थी। परन्तु चारों बहुत गरीब थे। वे हमेशा धन-प्राप्ति के लिए चिन्ता करते थे, उन्होंने सोचा कि समुद्र को रत्नाकर कहते हैं, वह रत्नों की खान है, तो उसको प्रसन्न करके ही धन-प्राप्ति क्यों न करें?

चारों ने समुद्र किनारे पर बैठकर तपस्या प्रारम्भ कर दी। स्नानादि से निपटकर वे समुद्र-पूजन करते थे और एक बार भोजन करके तपस्या करते। चारों भाइयों ने अपना-अपना काम बाँट लिया था। एक भाई एक भिक्षा

* 3 से 21 श्रीहरिने बताये हुए एकादश नियम हैं।

माँगकर लाता, दूसरा पानी भर लाता, तीसरा जंगल से लकड़ियाँ काट लाता तथा चौथा रसोई बनाता। चारों साथ बैठकर भोजन करते और तपस्या में लग जाते। यही था चारों का नित्यक्रम।

उनकी कठोर तपस्या, चारों का आपसी प्रेम, उनका मिलनसार स्वभाव तथा विशुद्ध आचरण देखकर समुद्रदेव प्रसन्न हो गए। उन्होंने चारों की परीक्षा लेने का निर्णय किया।

एक दिन समुद्रदेव ब्राह्मण का रूप लेकर पहले भाई से मिले और उसे पूछताछ करने लगे। उसने बड़े सरलभाव से अपनी सारी बातें समुद्रदेव को बता दी। बीच में ही समुद्रदेव कहने लगे कि मैं अभी-अभी तुम्हारें तीनों भाइयों से मिलकर आ रहा हूँ। तुम इतनी कड़ी मेहनत करते हो फिर भी न जाने क्यों, वे तीनों तुम्हारे विरुद्ध बोल रहे थे।

यह सुनकर ब्राह्मण ने समुद्र देव को डाँटते हुए कहा, 'मेरे भाई मेरे विरुद्ध एक शब्द भी नहीं बोलते। चले जाओ यहाँ से।' समुद्रदेव लज्जित होकर वहाँ से चल दिए। इस प्रकार वे, एक-एक करके - तीनों भाइयों से मिले, परन्तु चारों भाइयों से उन्होंने एक ही उत्तर पाया।

समुद्रदेव को भरोसा हो गया कि वास्तव में चारों भाइयों की एकता अटूट है। यदि मैं उनको धन दूँगा तो वे आपस में झगड़ा नहीं करेंगे तथा मेरे

दिए हुए धन का दुरुपयोग भी नहीं करेंगे। वे एक दिन चारों के समक्ष प्रत्यक्ष प्रकट हुए और प्रत्येक भाई को एक साथ अंजलिभर रत्न दे दिए। 'जहाँ मेल वहाँ मौज़' इस कहावत का यहाँ सभी को साक्षात्कार हो गया।

सद्गुरु मुक्तानन्द स्वामी ने गाया है कि 'थई एकमना प्रभुने भजीए' अर्थात् हमें एक जुट होकर रहना चाहिए। जहाँ एकता होती है, वहाँ कोई एक-दूसरे के विरुद्ध नहीं बोलता। ऐसी आपसी भावना देखकर ही भगवान प्रसन्न होते हैं। योगीजी महाराज भी हम सबको मेल, मैत्री और एकता रखने का उपदेश हमेशा दिया करते थे।

9. नेनपुर के देवजी भगत

खेड़ा जिले में महेमदाबाद तहसील का छोटा सा गाँव नेनपुर परमहंसों की पदरज से पावन हुआ है। कृपानन्द स्वामी तथा गुणातीतानन्द स्वामी विचरण करते हुए एकबार नेनपुर गाँव में देवजीभाई के घर पधारे। वे श्रीहरि के निष्ठावान भक्त थे। उन्होंने संतों का स्वागत करके उनके निवास का प्रबन्ध किया। भोजन के लिए स्वयं संतों ने ही मना कर दिया। देवजीभाई निश्चिंत होकर उनकी बातें सुनने के लिए बैठ गए। श्रीहरि की महिमा एवं लीलाचरित्रों की बातें कहते हुए रात के बारह बज गए।

देर रात गए देवजीभाई ने कहा, 'स्वामी! आप इतनी दूर से पैदल चलकर आए हैं, बहुत थके हुए लगते हैं। अत: आप विश्राम कीजिए।' इतना कहकर उन्होंने खेत की ओर जाने की तैयारी की। सन्तों ने पूछा : 'आप कब सोओगे?'

'स्वामी! मैं तो जाकर खेत में चक्कर लगाऊँगा, फिर दो सौ माला फेरूँगा, तब नींद थोड़ी दूरी पर खड़ी दिखाई देगी। मैं बुलाऊँगा, तब वह आएगी।' देवजीभाई ने सहज भाव से कहा। सन्तों को यह सुनकर अत्यन्त आश्चर्य हुआ।

एक बार श्रीहरि सभा में माला फेर रहे थे। सुरा खाचर ने स्वाभाविक रूप से पूछा : 'महाराज! हम तो आपके नाम की माला फेरते हैं, लेकिन आप किसके नाम की माला फेरते हैं?' 'हम अपने भक्तों के नाम की माला जपते हैं।' महाराज ने तुरन्त उत्तर दिया।

सुरा खाचर ने पूछा, 'आप किसकी माला जपते हैं, महाराज?' वे एक के बाद एक हरिभक्तों की नामावली सुनाने लगे।

श्रीहरि ने कहा, 'वे सभी भक्त तो हैं ही, लेकिन माला के मनके में उनका आना मुश्किल है।' इतना कहकर श्रीहरि ने देवजीभाई का स्मरण करके माला का एक मनका छोड़ा! ये ऐसे निष्ठावान तथा एकान्तिक भक्त थे।

देवजीभाई की तरह उनकी पत्नी भी, ऐसी ही भक्त थीं। उनके पुत्र को भी सर्वत्र और सर्वदा श्रीहरि का दर्शन हुआ। वह भी एकान्तिक स्थिति को प्राप्त कर चुका था। जब उसके जवान होने पर परिवारजनों से उसकी शादी के लिए पूछताछ होने लगी, तब माँ-बाप ने सोचा : 'यदि उसकी शादी करेंगे, तो उसे श्रीहरि के निरन्तर दर्शन का जो सुख मिल रहा है, वह अवश्य समाप्त हो जाएगा।' अत: उन्होंने महाराज को पुत्र की रक्षा के लिए प्रार्थना की। कुछ दिनों के बाद वह युवक केवल छोटी सी बीमारी में अक्षरनिवासी होकर महाराज के पास चला गया।

पुत्र की मृत्यु होने पर भी पति-पत्नी दोनों प्रसन्न थे। क्योंकि अपने लाडले पुत्र को श्रीहरि ने निरन्तर अपनी सेवा में रख लिया था। फिर भी लोग तो शोक मनाने के लिए लगातार आते रहते थे। एक रात्रि को देवजीभाई ने पत्नी से कहा : 'भाग्यवान, यदि हम यही पर रहेंगे, तो सगे-सम्बन्धी घर आकर स्वयं भी रोयेंगे, हमें भी रुलायेंगे। इसीलिए मैं जाता हूँ खेत में और तुम घी की हंडिया लेकर चली जाओ गढ़पुर। महाराज के पास जाकर महाराज की सेवा में घी निवेदित करना तथा मेरे कुशल समाचार कहना।'

पटलाइन अपने सिर पर घी की हंडिया उठाकर गढड़ा पहुँच गई। श्रीहरि दरबार में भोजन ले रहे थे। पटलाइन ने घी की हंडिया नीचे रखकर दूर से ही श्रीहरि के चरणों में प्रणाम किया। महाराज ने उनको तुरन्त पहचाना और पूछा, 'क्यों? पटेल मज़े में हैं न!'

'जी, महाराज! पटेल वैसे भी मज़े में थे और अब तो विशेष मज़े में हैं।' पटलाइन ने खखारते हुए उत्तर दिया। श्रीहरि तो सब कुछ जानते थे; परन्तु सभी को भक्त की महिमा समझाने के लिए उन्होंने पूरी घटना जानने के लिए आग्रह किया।

पटलाइन ने सभा में ही सभी को सबकुछ बता दिया। लाडुबाई,

जीवुबाई, हीरजी ठक्कर आदि सब वहीं खड़े थे। उनको सम्बोधित करके श्रीहरि कहने लगे, 'सुना, इस भक्त की समझदारी का आख्यान? अपना युवा पुत्र धाम में चला गया, फिर भी ये प्रसन्न रहते हैं और यहाँ दादाखाचर की बहन पाँचुबाई की पाँच साल की हीरूबाई धाम में चली गई, तो आज तक दरबारभुवन से शोक अदृश्य होने का नाम ही नहीं लेता। अरे, हमारा थाल तक बन्द हो गया! यदि हीरूबाई का शोक ही मनाना है, तो हरजी ठक्कर को मनाना चाहिए। क्योंकि पूर्वजन्म में वही उनकी माता थीं। उस स्त्री के मन में हमें भोजन करवाने का संकल्प था, तो इस घर में जन्म लेकर उसने हमें दूध-पूड़ी का नैवेद्य खिला दिया था। जब हमने खा लिया, वह अपने धाम में चली गई।'

यह सुनकर लाडुबाई, जीवुबाई का शोक मिट गया। वे हृदयपूर्वक पटलाइन को प्रणाम करने लगीं।

10. गुरु-शिष्य

गुरु

'गु' अर्थात् अन्धकार और 'रु' अर्थात् प्रकाश। अज्ञान के अंधकार से ज्ञान के प्रकाश की ओर ले जानेवाले संत को ही गुरु कहते हैं। समस्त जीव माया के अन्धकार में भटक रहे हैं। अहंकार और ममत्व को ही माया कहते हैं। यह माया जिस पर असर न डाल सके, उसीको गुरु कहा गया है। वेदरस ग्रंथ में श्रीहरि ने कहा है कि 'गुरु ही ब्रह्म है।'

सारंगपुर गाँव में श्रीहरि ने पुष्पदोलोत्सव मनाया था। यहाँ संतों ने 'सद्गुरु खेले वसन्त' नामक होरी का पद बोला, तब श्रीहरि ने संतों से पूछा, 'इस पद में जिनका वर्णन किया गया है, ऐसे सद्गुरु कौन है?' सन्तों ने प्रत्युत्तर दिया था, 'आप स्वयं ही ऐसे सद्गुरु हैं।'

उस समय श्रीहरि ने अपनी छड़ी गुणातीतानन्द स्वामी की छाती पर छुआकर कहा था, 'ऐसे सद्गुरु तो गुणातीतानन्द स्वामी हैं, जो कि हमारे रहने के लिए अक्षरधाम हैं।' गुणातीत का अर्थ होता है : सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण से रहित, गुणों से परे। ऐसे ब्रह्मभाव को प्राप्त सत्पुरुष ही गुरु कहलाते हैं।

गुरु ही, श्रीहरि से मिलने का द्वार है। जीव को विशुद्ध एवं ब्रह्मरूप करके हमें श्रीहरि की सेवा के लिए पात्र बना दें, उसी को गुरु कहते हैं।

कठोपनिषद में कहा गया है कि 'उठो, जागो, सत्पुरुष के पास जाकर आत्मज्ञान प्राप्त करो।'

श्रीमद् भागवत में भी परब्रह्म में तन्मय रहनेवाले ब्रह्मनिष्ठ तथा श्रोत्रिय गुरु के पास जाने का आदेश दिया गया है। कबीरजी ने भी कहा है कि –

'गुरु गोविन्द दोनू ठाड़े काके लागूँ पाय ।
बलिहारी वा गुरु की (जिसने) गोविन्द दियो बताय ॥'

अक्षरब्रह्म ही प्रकट गुरु हैं। ऐसे गुरु घर-घर नहीं होते। वे तो एक समय में एक ही रहते हैं। गुणातीतानन्द स्वामी के बाद भगतजी महाराज, शास्त्रीजी महाराज एवं योगीजी महाराज के बाद वर्तमान समय में प्रमुखस्वामी महाराज के द्वारा भगवान स्वामिनारायण इस पृथ्वी पर प्रकट हैं। इसीलिए वे ही हमारे गुरु हैं। उनकी शरण लेने से ब्रह्मभाव प्राप्त होता है तथा श्रीजीमहाराज का साक्षात्कार होता हैं।

शिष्यों के लिए उपासना एवं भक्ति सिद्ध करने के लिए गुरु आदर्श माध्यम है, आदर्श हमेशा पूर्ण होना चाहिए, तभी शिष्य में पूर्णता की आशा की जा सकती है। निष्काम (ब्रह्मचर्य), निर्लोभ, नि:स्वाद, निर्मान, नि:स्नेह इन पाँच वर्तमानों में जो पूर्ण हो और भगवान की सेवकभाव से जो भक्ति करते हों, वही वास्तव में गुरु है।

गुरु की परीक्षा तीन प्रकार से की जानी चाहिए। एक तो गुरु के गुरु का चरित्र देखना चाहिए, दूसरा गुरु का अपना आचरण देखना चाहिए तथा तीसरा गुरु के शिष्यों का आचार-व्यवहार कैसा है, वह देखना चाहिए। भागवत में ऋषभदेवजी कहते हैं कि 'जो जन्ममृत्यु के चक्र से छुड़ा नहीं सकता है, वह गुरु नहीं है।'

धर्म, ज्ञान, वैराग्य तथा माहात्म्य ज्ञान युक्त भक्ति को सुदृढ़ रखनेवाले तथा ब्रह्मरूप होकर परब्रह्म की सर्वोपरि उपासना करनेवाले परम एकान्तिक सन्त ही गुरुपद के लिए योग्य होते हैं। ऐसे गुरु की प्राप्ति, पूर्व जन्म के शुभ संस्कारों के कारण होती है। अत: हमें उपरोक्त लक्षण देखकर गुरु करने चाहिए।

शिष्य

जैसे गुरु आदर्श होने चाहिए, उसी प्रकार शिष्य भी आदर्श होने चाहिए। गुरु में अत्यन्त प्रीति तथा उनकी आज्ञा में सम्पूर्ण श्रद्धा एवं विश्वास हो, यह शिष्य का प्रमुख लक्षण है। अर्जुन ने श्रीकृष्ण से कहा था, *'शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।'* अर्थात् मैं आपका शिष्य हूँ तथा आपकी शरण में आया हूँ। मुझे उपदेश दीजिए।' इस प्रकार की शरणागति शिष्य के हृदय से प्रकट होनी चाहिए।

सत्यकाम जाबालि ब्रह्मविद्या सीखने के लिए गुरु के पास पहुँचा। उन्होंने इस शिष्य को चार सौ गायें देकर कहा कि इन गायों से जब हज़ार गायें हों, तब तुम आश्रम में लौटना। सत्यकाम ने गुरु-आज्ञा के अनुसार गायों की खूब सेवा की। जब हज़ार गायें हुईं, तब सत्यकाम के चेहरे पर ब्रह्मतेज झलकने लगा। गुरुकृपा से उसको अपने आप ब्रह्मज्ञान प्राप्त हो गया।

गुणातीत परंपरा के द्वितीय संत भगतजी महाराज ने अपने गुरु गुणातीतानन्द स्वामी के आदेश के अनुसार अपनी देह समर्पित कर दी थी, 'तन करी नाखे रे, गुरुवचने चूरेचूरा,' अर्थात् गुरु के वचन पर जो अपने शरीर को न्यौच्छावर कर सकता है, वही शिष्य है। भगतजी ने इस प्रकार साधना की, तब स्वामी उन पर प्रसन्न हो गए।

शास्त्रीजी महाराज ने एक बार योगीजी महाराज से कहा था, 'जोगी! इन मजदूरों तथा हरिभक्तों को हमेशा भोजन करवाना।' इस आदेश को दोहराने की गुरु को फिर कभी आवश्यकता न पड़ी, लगातार ४० साल तक योगीजी महाराज गुरु के उस आदेश का पालन करते रहे।

इस प्रकार गुरु तो शिष्य की आत्मा के स्थान पर होते हैं। जो आज्ञा के अनुसार आचरण करता है, वही आत्मारूप होकर आचरण करता है। गुरु के द्वारा शिष्य ब्रह्मस्थिति को भले ही प्राप्त कर ले, उसे गुरु के प्रति पूज्यभाव वैसा ही बना रहना चाहिए।

गुणातीतानन्द स्वामी कहते थे कि गुरु अंधकार में बिराजमान हों और शिष्य अपने प्रकाश से गुरु का दर्शन कर रहा हो; तो अपने मन में वह यही समझेगा कि यह प्रकाश तो मेरे गुरु के द्वारा दिया गया प्रकाश ही है। यह है गुरु के प्रति पूज्यभाव की पराकाष्ठा। योगीजी महाराज ने सत्संग का विदेशों

तक प्रचार किया; फिर भी वे प्रत्येक प्रसंग पर अपने गुरु शास्त्रीजी महाराज का स्मरण सबसे पहले किया करते थे।

'सम्प्रदायो गुरुक्रमः' शास्त्रों में कहा गया है कि सम्प्रदाय वही है, जहाँ आदर्श गुरुपरम्परा होती है। आज गुणातीत सद्गुरुओं की परम्परा में प्रकट ब्रह्मस्वरूप स्वामीश्री प्रमुखस्वामी महाराज बिराजमान हैं, जो हमारे गुरु हैं; वे तो आदर्श गुरु हैं ही, परन्तु हमें उनका आदर्श शिष्य बनना है।

11. आत्मानन्द स्वामी

भगवान स्वामिनारायण अपने गुरु रामानन्द स्वामी द्वारा दीक्षित सन्तों को 'गुरुभाई' समझते थे, तथा उनको 'भाई' कहकर बुलाते थे। ऐसे एक वरिष्ठ संत 'भाई' रामदास स्वामी के देहोत्सर्ग के बाद उनका स्थान श्रीहरि ने आत्मानन्द स्वामी को दिया था। तब से वे भी 'भाई' स्वामी अथवा भायात्मानन्द स्वामी के नाम से प्रसिद्ध होने लगे। 116 वर्ष की उम्र में उनका देह विलय हुआ था। इसीलिए सम्प्रदाय में वे वृद्धात्मानन्द स्वामी के नाम से भी जाने गए।

इस सन्तवर्य का जन्म राजस्थान के ऊँटवाल गाँव में संवत् 1799 (सन् 1743)में हुआ था। परमात्मा के प्रत्यक्ष दर्शन के लिए उन्होंने व्रत, जप-तप, अनुष्ठान आदि अनेक प्रकार की साधना की थी। परंतु वृद्धावस्था में उन्हें जूनागढ़ जिले के मेघपुर गाँव में श्रीहरि के प्रत्यक्ष दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। दर्शन करते ही उनको, श्रीहरि के स्वरूप का निश्चय हो गया और वे उनके आश्रित बनकर रह गए।

वे बड़े उत्साह के साथ भगवान स्वामिनारायण की छोटी सी छोटी आज्ञा का भी पालन करते थे। इसीलिए लोग उनको 'वचन की मूर्ति' नाम से भी पहचानते थे। श्रीहरि ने संतों के लिए अनेक कठोरतम नियम बनाए थे। स्वामी आत्मानंदजी ने पूरी निष्ठा के साथ उन नियमों का यथार्थ पालन किया था। एक बार श्रीहरि ने संतों से कहा, 'आज से आप सभी छः प्रकार के रसों का त्याग करके रहिए।' सभी संतों ने उत्साह पूर्वक इस नियम का दृढ़ता पूर्वक पालन किया। परन्तु केवल छः मास के बाद उन्होंने नियम समाप्त करने की आज्ञा दे दी। हालांकि भाई स्वामी को इस बात का समाचार नहीं मिला था,

इसीलिए उन्होंने षट्रस के नियम का लम्बे अर्से तक पालन किया। जब श्रीहरि से उनकी भेंट हुई, तब उन्होंने नियम समाप्त किया।

देह के प्रति उनकी अनासक्ति अनन्य थी। उनके शरीर पर काफी बाल होने पर भी वे स्नान करते हुए कभी अपने शरीर को हाथ से मलते ही नहीं थे। अत: धीरे धीरे शरीर में कीडे पड़ने लगे। पूरा शरीर त्वचा के रोग से सड़ने लगा। परन्तु स्वामी ने कभी भी देह की हिफ़ाजत नहीं की। कभी-कभी तो हाथ झटकते ही कोई कीड़ा जमीन पर गिर जाता, तो वे तुरन्त उसे उठा लेते और अपने शरीर पर पड़े घावों में रख देते! लोग देखते ही रहते और वे कीड़े से कहते, 'खा, खा यह तो तेरा खाद्य है।'

जब श्रीहरि को इस बात का पता चला, तो उन्होंने स्वामी को सभा में बुलवाया और नाई से शरीर के सारे बाल निकलवा दिये। गर्म पानी से उनको अच्छी तरह स्नान करवाया और दवा लगवाकर शरीर संभालने की आज्ञा दी।

परंतु शरीर की हिफ़ाजत करना उनके स्वभाव में ही नहीं था। एक बार उनके सारे शरीर पर खारिश (खुजली) की बीमारी हो गई थी। उनको विचरण के लिए दूसरे गाँव जाने की आवश्यकता हुई। गुणातीतानन्द स्वामी को साथ लेकर वे चलने लगे। परन्तु रोग के कारण गुणातीतानंद स्वामीने उनके लिए बैलगाड़ी की व्यवस्था की थी। परन्तु स्वामी बैलगाड़ी में बैठने के लिए तैयार नहीं हुए। उनसे अत्यन्त आग्रह किया गया, तो वे कहने लगे, 'मेरा नाम 'आत्मानन्द' है, आज तो मुझे मेरे नाम को सार्थक करना है।' इतना कहते ही वे पैदल चलने लगे। खारिश के पके हुए फोड़े फट्फट् फूट रहे थे, शरीर पर जगह जगह से मवाद बह रहा था। गुणातीतानन्द स्वामी उनकी इतनी पीड़ा नहीं देख पाए। दूसरे गाँव में पहुँचते ही उन्होंने मवाद साफ किया। गर्म जल से स्नान करवाया तथा औषध लगा कर उनकी बहुत सेवा की।

उनकी ऐसी आत्मस्थिति को देखकर श्रीहरि अनेक बार अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते थे, उनको हार अथवा प्रसाद देते थे।

उनकी उम्र सौ साल से भी अधिक हो चुकी तब उनके नये दाँत भी फूट निकले थे। श्रीहरि के प्रति उनके हृदय में अनन्य श्रद्धा और निष्ठा थी।

श्रीहरि के अक्षरधामगमन के बाद वे प्राय: वागड गाँव में रहते थे। गुणातीतानन्द स्वामी उनके साथ ही विचरण करते और उनकी सेवा-सुश्रूषा करते इसीलिए भाईस्वामी उनके प्रति अपूर्व सद्‌भाव रखते।

रघुवीरजी महाराज के साथ एक बार वे नडियाद पधारे। वहाँ पधरावनी में एक हरिभक्त के घर बड़े-बड़े सन्त उपस्थित हुए थे। सभी के बैठने के लिए कुर्सियाँ लगाई गई थीं। भाईस्वामी को यह पसंद नहीं आया, उन्होंने दूसरे दिन सभी के साथ पधरावनी में जाने से इन्कार कर दिया। रघुवीरजी महाराज को कहलवा दिया कि भगवान स्वामिनारायण ने हमें आँखों पर पट्टी बँधवाकर भरी बाजार में घूँघट निकलवाए थे और आप हमारी कुर्सियाँ स्त्रियों के बीच में रखवा कर साधुओं को वहाँ खड़ा कर देते हैं! पहले कुर्सियाँ निकलवा दीजिए, तभी हम पधरावनी के लिए आएँगे।'

रघुवीरजी महाराज ने उनकी आज्ञा के अनुसार प्रबंध कर दिया। तभी वे हरिभक्तों के घर पधारे।

वे हमेशा धर्म-नियम के पालन में ऐसे ही कठोर सदाग्रही रहे थे। वे कहते थे कि जैसे एक म्यान में दो तलवार नहीं रह सकती, उसी तरह प्रीति तथा धर्म भी एक साथ कभी नहीं रह सकते। धर्म रखना हो तो संसारियों से स्नेहभाव छोड़ना पड़ेगा, और यदि प्रीति रखनी है तो धर्मनिष्ठा को छोड़ना पड़ेगा।'

वे अपने अंतिम दिनों में वागड़ के पास अणियाली गाँव में रहते थे। उनकी आयुष 116 वर्ष की हो चुकी थी। एक बार गुणातीतानन्द स्वामी वहाँ पधारे तो भाईस्वामी से पूछने लगे कि स्वामी, आप कभी सोचते हैं कि श्रीहरि आपको अपने धाम में क्यों नहीं ले जाते ?

उन्होंने कहा, 'मेरे मन में भी यही प्रश्न पैदा होता है कि मुझमें ऐसी क्या कमी है कि महाराज मुझे अपने पास नहीं बुला लेते?' वे सरल भाव से कहने लगे।

तब गुणातीतानन्द स्वामी ने कहा आप श्रीहरि के स्वरूप की सर्वोपरि महिमा समझें। जब उनके स्वरूप की यथार्थ महिमा समझ में आ जाएगी तब वे आपको अपने पास बुला लेंगे।'

इतना कहकर उन्होंने श्रीहरि के अनेक प्रसंगों का स्मरण दिलाया और

प्रत्येक प्रसंग से वे श्रीहरि को सर्वावतारी परब्रह्म साबित करते रहे। अब स्वामी आत्मानंदजी के अंत:चक्षु खुल गए। वे बड़े प्रसन्न होकर कहने लगे, 'आजतक तो मैं श्रीहरि को श्री कृष्ण के समान समझता था, परंतु आज आपकी बातों से उनके शुद्ध स्वरूप की पहचान हो गई।'

वे पहले तो गुणातीतानन्द स्वामी को अपने भोजन से प्रसादी देते थे, परंतु आज उन्होंने बरबस गुणातीतानन्द स्वामी के भोजन से प्रसादी ली। गुणातीतानन्द स्वामी बोटाद पधारे और उसी दिन संवत् 1916, ज्येष्ठ कृष्णा षष्ठी के दिन भाई आत्मानन्द स्वामी अक्षरधाम में बिराजमान हो गए।

उन्होंने श्रीहरि के लीलाप्रसंगों पर अपने अनुभवों का एक छोटा सा ग्रन्थ भी लिखा है।

12. बोचासण के काशीदास

गुजरात के खेड़ा जिले में बोचासण गाँव बहुत छोटा था। वहाँ काशीदासजी को बचपन में ही वर्णीरूप में भगवान स्वामिनारायण से भेंट हुई थी। उसके बाद वे जब यात्रा के लिए द्वारिका जा रहे थे, तब रास्ते में उनकी भेंट श्रीहरि के सन्तों के साथ हुई थी। संतों ने उनको श्रीहरि की अपार महिमा समझाई, उसके बाद काशीदासजी गढ़पुर आए और श्रीहरि के पास वर्तमान धारण करवाके श्रीहरि के दृढ़ आश्रित हुए।

वे जैसे ही सत्संगी बने कि तुरन्त उनके लड़के का देहान्त हो गया! कुछ समय के बाद उनका अच्छा खासा बैल भी मर गया! तत्पश्चात् उनकी एक दुधारू भैंस मर गई! एक के बाद एक ऐसी दुर्घटनाओं से, उनके सम्बन्धी चिंतित हो गए। वे सभी मिलकर काशीदासजी को सत्संग छोड़ देने के लिए समझाने लगे, परंतु वे अपने निश्चय पर अडिग रहे।

एकबार श्रीहरि सौराष्ट्र में लोया गाँव में सुराखाचर के घर पर शाकोत्सव मना रहे थे। उत्सव में समूचे देश एवं विभिन्न प्रांतों के कई हरिभक्त आमंत्रित थे। काशीदासजी भी संघ के साथ वहाँ उपस्थित थे। उत्सव में श्रीहरि ने स्वयं बैगन का साग बनाया था। अपने हल्दीवाले हाथ वे अपनी ही धोती से पोंछ लेते थे, पसीने से उनका सारा बदन भीग चुका था। उनको देखकर बिलकुल ही नहीं लगता था कि ये स्वयं मनुष्यरूप में परमात्मा हैं। ऐसे मनुष्यचरित्र को

देखकर काशीदासजी के मन में संशय होने लगा।

भोजन के बाद सभा का आयोजन हुआ। श्रीहरि ने सभाजनों से सहज ही पूछा कि कोई व्यक्ति कष्ट सहन करके बनारस जाए और वहाँ गंगा का पानी मैला देखकर गंगास्नान न करे और आचमन तक न करे, तो उसको क्या कहते हैं?

प्रश्न सुनते ही काशीदासजी समझ गए कि यह प्रश्न श्रीहरि ने मेरे लिए ही छेड़ा है। श्रीहरि के अंतर्यामी ऐश्वर्य को देखकर उनके मन का समाधान हो गया। श्रीहरि के स्वरूप का उनके हृदय में दृढ़ निश्चय हो गया।

उनके पिता किसी परोक्ष देवता के उपासक थे, उनके हृदय में भी अपने पुत्र के प्रति गुणभाव पैदा हुआ। वे भी धीरे-धीरे सत्संग के साथ जुड़ गए। काशीदासजी की निष्ठा एवं प्रेमभावना के वश में होकर श्रीहरि बत्तीस बार बोचासण पधारे थे।

उन दिनों गाँव में अच्छी फसल पैदा नहीं होती थी, इसीलिए काशीदासजी नील का व्यापार कर रहे थे। रंग के कुण्डों में लाखों कीड़े प्रतिदिन मरते थे। बड़ी हिंसा होती थी। परन्तु वे करते भी क्या? श्रीहरि ने उनको वरदान दिया कि, 'तुम्हारे यहाँ सप्तधान्य अर्थात् सातों अनाज की फ़सलें बहुत अच्छी पैदा होगी। परन्तु अब से जिस व्यापार में कितनी हिंसा होती है, उसे बंद करें।' श्रीहरि की आज्ञा से उन्होंने नील के सभी कुण्ड तुड़वा दिए और श्रीहरि के आशीर्वाद से उनके खेतों में सभी प्रकार के धान्य की फ़सल लहलहाने लगी।

काशीदासजी हमेशा प्रकट भगवान की प्राप्ति के खुमार में रहा करते थे। एक दिन उन्होंने सोचा कि जैसी प्राप्ति मुझे हुई है, वैसी ही प्राप्ति मेरे अपने सगे-सम्बन्धियों को क्यों न हो, ताकि उनका भी कल्याण हो जाए। उन्होंने श्रीहरि को निमंत्रण दिया। महाराज बोचासण पधारे। उनके लिए सुन्दर मुहाफा[22] (रथ) तैयार कराकर श्रीहरि को अपने सम्बन्धियों के घर-घर और गाँव-गाँव विचरण करने ले गए। फलस्वरूप उनके तमाम सम्बन्धी सत्संगी बन गए।

---

22. ये मुहाफा गांधीनगर(गुजरात) में भगवान स्वामिनारायण के भव्य स्मारक 'अक्षरधाम' में रखा गया है।

काशीदासजी का तम्बाकू का व्यापार भी बहुत बड़े पैमाने पर चलता था। वे बैलगाड़ियाँ लेकर गढड़ा तक तम्बाकू बेचने के लिए जाते थे, वहाँ कुछ दिनों तक ठहरते और महाराज के सत्संग का लाभ लेते। जब श्रीहरि उनको घर जाने का आदेश देते, तो वे कहते कि महाराज अब तक तम्बाकू बिकी नहीं है और कुछ उगाही भी बाक़ी है, इसलिए कुछ दिन तक ठहरना होगा।

एकबार व्यापार में उनको बहुत बड़ा घाटा आया। लेनदारों की शिकायत से खेड़ा की कोर्ट में अभियोग चलाया गया। कोर्ट ने फ़ैसला सुनाते हुए कहा कि यदि काशीदासजी पैसे की भुगतान नहीं कर सके, तो उनको छः महीने की कैद की सजा भोगनी पड़ेगी।

वे समय पर पैसे नहीं दे सके, फलस्वरूप उनको जेल में जाना पड़ा। वहाँ बिना स्नानादि के पूजापाठ कैसे हो सकता था? वे सोचने लगे कि बिना पूजा-पाठ के मैं जेल में भोजन नहीं करूँगा? वे उदास तो इसलिए थे कि यह गढ़पुर के उत्सव का लाभ छोड़ना पड़ेगा तथा श्रीहरि का दर्शन लाभ नहीं मिल पाएगा। वे जेल में व्याकुल रहने लगे।

दूसरे दिन सिपाही उनको भोजन के लिये बुलाने आ पहुँचे। काशीदास ने कहा, 'मैं बिना स्नान-पूजा के भोजन नहीं कर सकता।' उनकी बिनती मान्य रखते हुए तथा उनको भक्त जानकर हथकड़ी लगाकर उनको स्नान कराने के लिए कुछ सैनिक वात्रक नदी पर ले गए। यहाँ जैसे ही उन्होंने श्रीहरि के स्मरण के साथ नदी में प्रवेश किया, उसी क्षण श्रीहरि ने उनको 250 की.मी की दूरी पर गढ़पुर की घेला नदी में रख दिया! जब वे गोता लगाकर पानी के बाहर निकले तो न तो वात्रक नदी का तट था, न तो पैरों में बेडियाँ थीं! दूर तक देखने पर कहीं सिपाहियों का नामोंनिशान नहीं मिला। जब मालूम हुआ कि मैं तो गढ़पुर में हूँ, वे दौड़े-भागे श्रीहरि के पास पहुँच गए।

सिपाहियों ने काफी प्रतीक्षा की, परन्तु काशीदासजी नहीं लौटे तो 'वे उनको डूबे हुए समझकर वापस लौट गए। श्रीहरि ने पूरे छः महीने तक उनको गढ़पुर में अपने सत्संग का लाभ दिया तथा आशिष देकर घर भेजा।

इस चमत्कार से उनके सभी लेनदार चकित रह गए। काशीदासजी को सच्चे भक्त समझकर उन्होंने अपना कर्जा माफ कर दिया।

एकबार अचानक उनके मकान में आग लग गई। श्रीहरि उस समय गढ़पुर में बिराजमान थे। वे अक्षरकुटीर में अचानक अपने हाथ मलने लगे। कुछ ही देर में उनके हाथ में फफोले पड़ गए। सेवकों ने घबड़ाकर पूछा, 'महाराज! यह क्या हुआ?'

तो उन्होंने कहा, आज तो 'काशीदासजी के घर में आग लगी थी। हम वहाँ उसे बुझाने के लिए गए थे!'

कुछ वर्षो के बाद श्रीहरि ने वरताल में मन्दिर निर्माण का आरम्भ किया था। वहाँ लक्ष्मीनारायणदेव की मूर्तियाँ प्रतिष्ठित करनी थी। जिसे बड़ोदरा के अमीचंद सेठ के घर से लेकर कुछ संत वड़ताल लौट रहे थे। मार्ग में भालज गाँव के पास भारी वर्षा होने के कारण बैलगाड़ी कीचड़ में फँस गई थी। बोचासण के लोगों ने आकर किसी तरह बैलगाड़ी निकाली और मूर्तियाँ काशीदासजी के घर रखी गईं।

प्रतिष्ठा के अवसर पर मूर्तियाँ लाने के लिए श्रीहरि स्वयं बोचासण पधारे। काशीदासजी की माता नानीबाई ने कंसार-हलुआ का प्रसाद मूर्तियों

को निवेदित किया था। श्रीहरि को भोजन करवाया। इतने दिनों तक अपने घर में सुंदर मूर्तियों के साथ परिवारजनों को इतनी आत्मीयता हो गई थी कि वे मूर्ति लेने के लिए असमंजस में पड़े हुए थे। परन्तु जब मूर्तियाँ उठाई गईं, तब गद्‌गद होकर माँ ने निवेदन किया कि आप बोचासण में ही मन्दिर बनवाकर इन मूर्तियों की प्रतिष्ठा करने की कृपा करें। उस समय श्रीहरि ने काशीदासजी के हाथ पकड़कर उनकी माँ को वचन दिया था कि इस गाँव में तो हम अपने अक्षरधाम के साथ बिराजमान होंगे।

इस प्रसंग के बाद भी श्रीहरि ने काशीदासजी को अनेक बार आशीर्वाद देते हुए कहा था कि 'हम बोचासण में सर्वोपरि मन्दिर का निर्माण करेंगे।'[23]

संवत् 1918 में काशीदासजी अक्षरवासी हुए। उनकी उत्तरक्रिया के अवसर पर रघुवीरजी महाराज तथा अक्षरब्रह्म गुणातीतानन्द स्वामी संतों के साथ पधारे थे। उनके पुत्र देसाईभाई ने सभी की सत्रह दिन तक अपार सेवा करके उनको प्रसन्न किया था।

13. प्रार्थना

वन्दन करीए प्रभु भाव धरी,
स्वामिनारायण श्री सहजानन्दजी - वन्दन०
आप प्रभु छो धामना धामी,
बळवन्ता बहुनामी हरि, प्रभु (2) - वन्दन०
जीव अनन्तना मोक्षने अर्थे
अनादि अक्षर साथ लई, प्रभु (2) - वन्दन०
पुरुषोत्तमनारायण पोते
प्रगटया मानव देह धरी, प्रभु (2) - वन्दन०
स्वामी गुणातीत अनादि अक्षर,
पुरुषोत्तम सहजानन्दजी, प्रभु (2) - वन्दन०

23. श्रीजीमहाराज के आशीर्वाद से शास्त्रीजी महाराज ने बोचासण में सर्वोपरि मन्दिर बनवाया और वहाँ श्रीजीमहाराज और गुणातीतानन्द स्वामी की मूर्तियों की प्रतिष्ठा की।

यज्ञपुरुषमां अखण्ड रहीने,
ज्ञानजीवनमां अखण्ड रहीने,
प्रमुखस्वामीमां अखण्ड रहीने,
उपासना शुद्ध प्रगट करी, प्रभु (2) - वन्दन०
भक्ति एज अमारुं जीवन,
सेवा एज अमारुं जीवन,
देजो रोम रोम भरी, प्रभु (2) - वन्दन०

(धाम के धामी, बलवान, बहुनामी श्रीहरि सहजानन्दजी को - हम भावपूर्वक प्रणाम करते हैं। हे प्रभो! आप अनन्त जीवों के मोक्ष के लिए अनादि अक्षरब्रह्म के साथ मानवदेह धारण करके प्रकट हुए हैं, स्वामी यज्ञपुरुषदासजी, ज्ञानजीवनदासजी तथा प्रमुख स्वामी महाराज में अखण्ड निवास करके आपने शुद्ध उपासना प्रकट की है। हमारा जीवन भक्तिमय तथा सेवामय हो, यह भावना हमारे रोम-रोम में भर जाए, ऐसा आशीर्वाद देने की कृपा करें!)

14. भुज की लाधीबाई

गुजरात के कच्छ प्रदेश का भुज नगर छोटा सा शहर था। यहाँ रामानन्द स्वामी की शिष्या लाधीबाई रहती थीं। रामानन्द स्वामी के धाम गमन के बाद श्रीहरि जब भुज पधारे, तब उन्होंने लाधीबाई को बुलाने के लिए एक हरिभक्त को भेजा। जब उसने लाधीबाई को श्रीहरि का आदेश दिया कि, 'सहजानन्द स्वामी, आपको दर्शन के लिए बुला रहे हैं।'

तब लाधीबाई कहने लगीं, 'स्वामी तो मेरे लिए एक ही हैं और वे हैं रामानन्द स्वामी। इसलिए मैं अन्य किसी साधु-महात्मा के दर्शन के लिए नहीं जाती।'

जब श्रीहरि को यह खबर मिली तो उन्होंने लाधीबाई को कहलवाया कि आप रामानन्द स्वामी की शिष्या हैं, तो हम भी उन्हीं के शिष्य हैं, इसीलिए हम आपके गुरुभाई हुए, अतः हमें तो आप से अवश्य मिलना है।

लाधीबाई यह सुनकर प्रसन्न हुईं और श्रीहरि के दर्शन के लिए आ पहुँचीं। जब वे दर्शन करके घर लौट रही थीं, तो मार्ग में रघुनाथजी का

मन्दिर दिखाई दिया। लाधीबाई दर्शन के लिए मंदिर में गईं, तो मूर्ति में साक्षात् श्रीहरि का दर्शन होने लगा। यह देखकर लाधीभाई विस्मित रह गई। उसके मनमें श्रीहरि के प्रति परमात्मभाव का निश्चय होने लगा।

वे श्रीहरि को गुरुभाई होने के नाते 'भाई' कहकर पुकारती थीं। एक बार लाधीबाई ने श्रीहरि को भोजन के लिए निमंत्रण दिया तो उन्होंने कहा, 'बाई, हम तो तुम्हारे घर रोटी और हरी मिर्च का गोला ही खाएँगे।'

लाधीबाई ने महाराज को भोजन के लिए आसन दिया। सामने चौकी बिछाई और रोटी के साथ हरी मिर्च का गोला बनाकर रखा। जब महाराज ने खाना शुरु किया तो वह रसोई में जाकर तुरंत हलवा, पूड़ी का थाल लेकर आ पहुँची। श्रीहरि लाधीबाई का भक्तिपूर्ण स्नेह देखकर वही भोजन ग्रहण करने लगे। लाधीभाई, श्रीहरि के सामने हाथ जोड़कर दर्शन कर रही थी। श्रीहरि की कृपादृष्टि से कुछ पलों के बाद उसे समाधि लग गई।

समाधि में उनको दर्शन होने लगा कि अक्षरधाम में दिव्य सिंहासन पर श्रीहरि बिराजमान हैं, अनन्त मुक्त उनकी सेवा में उपस्थित हैं। स्वयं रामानन्द स्वामी भी सेवासुश्रूषा में लगे हुए हैं। यह देखकर लाधीबाई विस्मय में पड़ गई। अचानक रामानन्द स्वामी ने कहा, 'लाधीबाई, तुम सहजानंद स्वामी के साथ असम्मानजनक व्यवहार क्यों करती हो? तुम्हारे घर आकर जो भोजन ग्रहण कर रहे हैं, वही परमात्मा यहाँ अक्षरधाम में सिंहासन पर बिराजमान हैं। वे ही पुरुषोत्तमनारायण हैं और सभी अवतारों के कारण हैं, तुम गंगाराम मल्ल तथा सुन्दरजी बढ़ई से भी यह बात मेरी ओर से कहना।'

श्रीहरि कृपा से जब लाधीबाई समाधि से जाग्रत हुई कि तुरंत महाराज का स्वर सुनाई दिया, 'लाधीबाई, थोड़ा हलवा दीजिए।' लाधीबाई तुरंत हलावा परोसने लगी। उन्होंने समाधि का स्वानुभव सभी हरिभक्तों को सुनाया और सभी को श्रीहरि के स्वरूप का दृढ़ निश्चय करवाया।

अब उन्होंने निश्चय कर लिया कि अब तो श्रीहरि के आदेश के अनुसार ही जीवन जीना है। उनकी दृढ़ता की परीक्षा के लिए एक बार श्रीहरि ने उनको आज्ञा दि कि आज आप लाल चुनरी पहनकर, चूड़ियाँ आदि गहने पहनकर माथे पर बिन्दिया लगाकर गाँव के बाहर जाकर कुएँ से पानी का घड़ा भर कर लाइए।

लाधीबाई ने उस आदेश पर पल भर के लिए भी शंका नहीं की। वे विधवा होते हुए भी सौभाग्यवती का वेश बनाकर, सिर पर घड़ा रखकर, तालियाँ बजाती, कीर्तन गाती हुई भरी बाजार से निकलीं। यह देखकर लोग उनका उपहास करने लगे। क्योंकि उस युग में रूढ़िवादियों का वर्चस्व था। अनेक परंपरावादी लोग इस प्रकार की रूढ़ियों का उल्लंघन नहीं देख पाते थे। ऐसे संकीर्ण मानसिकतावाले लोगों ने लाधीबाई का वीभत्स मज़ाक उड़ाया! और उनसे पूछा, 'अरे लाधी, तूने किसका घर बसाया?'

लाधीबाई ने भक्ति और उमंग के साथ उत्तर दिया, 'मैंने तो पुरुषोत्तमनारायण का घर बसाया है।'

जब वे श्रीहरि के पास पहुँचीं, तो श्रीहरि बहुत प्रसन्न हुए और उनको आशीर्वाद देने लगे।

पुष्पदोलोत्सव के लिए एकबार लाधीबाई गढ़डा आई थीं। उसी समय राजस्थान के उदयपुर राज्य की महारानी झमकूबाई राज्यसुख का त्याग करके श्रीहरि के पास अध्यात्मसाधना के लिए चली आई थीं। वह श्वेतवस्त्र धारण करके दादाखाचर की बहनों के साथ तपस्या कर रही थीं। श्रीहरि उनको 'माताजी' कहते थे। श्रीहरि ने उत्सव के बाद लाधीबाई को बुलाकर कहा, 'आज से आप और माताजी दोनों मिलकर भुज में साथ-साथ रहना और साथ मिलकर भजन-भक्ति और सेवा साधना करते रहना।'

महाराज के आदेशानुसार दोनों जीवनभर साथ रहकर साधना करती रहीं। जब लाधीबाई की मृत्यु का समय आया, तो माताजी भी उनके साथ देहत्याग के लिए तैयार हो गईं। उन्होंने लाधीबाई से कहा, 'आपके पहले मैं श्रीहरि के पास जा रही हूँ। आप मेरे पीछे आना।'

और ऐसा ही हुआ। माताजी ने भगवत् स्मरण के साथ शरीर का त्याग कर दिया। उनके पीछे लाधीबाई भी श्रीहरि के धाम की अधिकारी हो गईं।

15. दुबली भट्ट

'आइए, आइए भट्टजी' श्रीहरि ने सभा में आनेवाले दुबली भट्ट का स्वागत किया।

सभा आश्चर्य में पड़ गई। गरिमामय वस्त्रों में सुसज्ज, बड़ी-बड़ी

मूँछों पर ताव देकर सभा में अग्र स्थान लेनेवाले प्रतिष्ठित काठी दरबारों की सभा में, आज इस मामूली आदमी का इतना सम्मान क्यों हो रहा है? सभी के मन में यही प्रश्न हलचल मचाए हुए था।

यह सभा साधारण लोगों के लिए नहीं थी; क्योंकि आज इस सभा में गढ़पुर में निर्माण होने वाले भव्य मंदिर के लिए हज़ारों रुपये का चंदा लिखवाया जा रहा था। बड़े-बड़े काठी जमींदार यथाशक्ति चंदा दे रहे थे। इस सभा में, दरिद्रता के मूर्तिमान स्वरूप दुबली भट्ट का भला क्या काम हो सकता है? परंतु श्रीहरि ने उनका बड़े भाव से स्वागत किया। लोग उनको आगे बढ़ने का मार्ग देने लगे।

बुढ़ापे के कारण जर्जर हो चुकी दुबली भट्ट की क्षीणकाय काया, फटेहाल कपड़े और पगड़ी से उड़ रहे चीथड़ों को देखकर, भट्टजी की कंगाल स्थिति का अनुमान कोई भी लगा सकता था! उन्होंने महाराज के चरणों दंडवत् प्रणाम किया। श्रीहरि ने उनको उठाकर गले लगाया और हालचाल पूछने लगे। दुबली भट्ट ने आचनक अपनी पगड़ी उतारी, कुछ संकोच के साथ उन्होंने उस फटी-पुरानी पगड़ी के छोर से एक के बाद एक गाँठें खोलना प्रारंभ किया। कुल मिलाकर तेरह पैसे श्रीहरि के चरणों में रख दिए।

'प्रभो! यह गोपीनाथजी की सेवा के लिए अर्पण करता हूँ।' भट्टजी ने गद्‌गद भाव से निवेदन किया।

श्रीहरि इतना अनन्य समर्पण देखकर अत्यंत प्रसन्न हुए और उन्होंने जोर से सभा के सामने 'गोपीनाथ महाराज की...' जय का जयघोष करवाया।

दरबारों ने जयघोष तो किया; पर आपस में एक-दूसरे को देखकर आश्चर्य व्यक्त करने लगे। अचानक सुराखाचर ने श्रीहरि से कहा, 'महाराज! आपने यह जयघोष किस बात के लिए करवाया?'

'आज गढ़डा के मन्दिर का निर्माण पूर्ण हो गया, इसलिए...!'

'लेकिन भट्टजी ने आपको इतना क्या दे दिया?'

'ये रहे तेरह पैसे!' श्रीहरि हाथ उपर उठा कर सभी को दुबली भट्ट का दान दिखाने लगे।

एक दरबार ने पूछा, 'इतने पैसों से मन्दिर बन सकता है क्या?'

'क्यों नहीं? आप सभी के घर पर कीमती घोड़ियाँ पूँछें झटकती हुईं आपके घर की समृद्धि का उद्घोष कर रही हैं, आप सभी ने अपने-अपने संसार-व्यवहार को सम्हालते हुए हज़ार, दो हज़ार रुपयों का दान दिया है, लेकिन इस ब्राह्मण के पास न तो गाँव में घर है, न तो सिवान में खेत, केवल कर्मकांड करके अपना पेट पालता है। जो कुछ उसके पास बचा था, वह सब उसने हमारे चरणों में धर दिया, भक्तों का इतना भाव है, तो समझिए कि हमारे मन्दिर का काम पूरा हो ही गया।'

वैसे तो दुबली भट्ट चांदगढ़ गाँव के निवासी थे, लेकिन 'मोटा गोखरवाला' गाँव में कर्मकांड करके गुजारा करते थे। उनका नाम तो रणछोडजी महाराज। लेकिन उनकी दुर्बल काया के कारण लोग उनको दुबली भट्ट कहकर बुलाते थे। वे श्रीहरि के सर्मपित भक्तराज थे।

एकबार वे अपने समधी के यहाँ गए थे। वहाँ वे स्नानादि के बाद नियमानुसार श्रीहरि की मूर्ति सामने रखकर आँखें मूँदकर मानसी पूजा करने लगे। समधी कुसंगी थे, उन्होंने भट्टजी का मज़ाक उड़ाने के लिए पूजा की मूर्ति उठा ली और उस जगह जूता रख दिया। भट्टजी जब जाग्रत हुए तो उन्होंने मूर्ति के स्थान पर जूता देखा। वे तुरन्त बोल उठे, 'ये किसकी आँखें फूट गई हैं कि मूर्ति के स्थान पर जूता रख दिया!' बस वे इतना बोले ही थे कि उनके समधी की दोनों आँखें बाहर निकल आईं! समधी अन्धे हो गए। दुबली भट्ट की भक्ति की सच्चाई का परिचय सभी को हो गया।

श्रीहरि ने प्रसन्न होकर उनको सुवर्ण का छल्ला और कड़ा प्रसादी के रूप में दिया था। जो आज भी उनके वंशजों के पास विद्यमान है।

16. व्रत और उत्सव

सुख-दु:ख के अंतर्द्वन्द्व से घिरे, इस जीवन में ऐहिक और पारलौकिक आनन्द की प्राप्ति के लिए, भारत के प्राचीन आर्षद्रष्टा ऋषियों-मुनियों ने अनेक प्रकार के व्रतों तथा उत्सवों का आयोजन किया है। कहा गया है, *'उत्सवप्रिया: खलु मानवा:'* अर्थात् मनुष्य उत्सवप्रेमी होता है। व्रत, पर्व और उत्सव के स्वरूप यद्यपि अलग-अलग हैं, फिर भी उनमें एक-दूसरे के बीच काफी साम्य दिखाई देता है।

भगवान स्वामिनारायण ने भारत की उत्सव-परम्परा को काफी प्रोत्साहित किया है; साथ ही साथ स्वयं भी उत्सव मनाकर अपने दिव्य सम्बन्ध से अनेक व्रत, पर्व एवं उत्सवों को दिव्य बनाया है। उनके समय में कई उत्सवों का स्वरूप विकृत हो गया था। उन दिनों लोगों की यही मान्यता थी कि मेला लगाना, मेले में बड़ी संख्या में लोगों को इकट्ठा करना और मौज़-मस्ती उड़ाकर चले जाना ही उत्सव है! ऐसे माहौल में होली तो दुराचार का स्वरूप ही बन गई थी। स्त्री-पुरुषों में स्वच्छंद व्यवहार तथा गालियाँ बोलकर वातावरण को दूषित करना, इस उत्सव की मुख्य विशेषता मानी जाती थी। व्रतों और पर्वों में बड़ी संख्या में अन्धश्रद्धा ही अन्धश्रद्धा फैली हुई थी।

भगवान स्वामिनारायण ने ऐसे व्रतोत्सवों की कायापलट कर दी। उन्होंनें उत्सवों को 'समैया' के नाम से प्रचलित किया। इस उत्सव-समैया में देवदर्शन, कथावार्ता, भगवान के प्रत्यक्ष सानिध्य का लाभ, अपने एकान्तिक भक्तों के दर्शन तथा भक्तिपूर्ण कीर्तनों का गान आदि से उन्होंने भारतीय उत्सवों को दिव्य एवं निर्गुण बनाया। सद्गुरु निष्कुलानन्द स्वामी ने भक्तचिन्तामणि में कहा था, 'जेम अन्य लोक थाय भेला, तेम समजशो मा एह लीला।' (प्रकरण-77) अर्थात् अधिक लोग एकत्र होने मात्र से उत्सव अथवा लीला नहीं कही जाती। उत्सव में तो, निष्कुलानंद स्वामी के अनुसार -

'पण जाण्ये अजाण्ये जे जन, करशे महाप्रभुनां दर्शन ।
वळी सुणशे आ लीलाचरित्र, ते नर थाशे निश्चय पवित्र ॥'

अर्थात् जाने-अनजाने में भी यदि कोई मनुष्य महाप्रभु का दर्शन करेगा और उनके लीलाचरित्रों को सुनेगा, तो वह निश्चित रूप से पवित्र हा जाएगा।

श्रीहरि ने बड़े-बड़े यज्ञों का आयोजन किया था। यज्ञोत्सवों में उन्होंने हज़ारों ब्राह्मणों को भोजन करवाया था। हरिजयन्ती, जन्माष्टमी आदि व्रतों के अवसर पर हज़ारों सत्संगियों को निमंत्रित किया था। श्रीहरि ने वचनामृत में उत्सव-समैया के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि 'हम बड़े-बड़े विष्णुयाग तथा प्रतिवर्ष जन्माष्टमी, एकादशी आदि व्रतों का आयोजन करते हैं और उनमें ब्रह्मचारियों, साधुओं तथा सत्संगियों को एकत्र करते हैं। यदि कोई पापी भी हो और उसे अपने अन्त समय पर ऐसी स्मृति हो जाए, तो उसे भी भगवान का धाम प्राप्त हो जाता है।' (वच. ग. प्र. 3)

अपनी मूर्ति की स्मृति के लिए श्रीहरि ने उत्सवों का प्रचलन किया। उत्सवों में कथावार्ता द्वारा लोकहृदय में तात्त्विक ज्ञान की दृढ़ता होती है; सादगीपूर्ण जीवन तथा सामूहिक जीवन के पाठ सीखने का अवसर प्राप्त होता है। एक दूसरों से मिलने के कारण हरिभक्तों के हृदय आत्मीयता से खिल उठते हैं। भगवान तथा उनके संतों के प्राकट्योत्सवों में उनके लीलाचरित्रों का पान करके तथा उनके सद्गणों का स्मरण हरिभक्तों का चित्त निर्मल होता है।

●

यह हम व्रत, पर्व एवं उत्सवों के विभिन्न हेतुओं का विचार करेंगे :

व्रत

व्रतों में सत्त्वगुण प्रधान होता है, तथा रजस् एवं तमस् के गुण गौण होते हैं। व्रत आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त करने के लिए किए जाते हैं। व्रतों से आत्मा की शुद्धि होती है। शास्त्रीय विधि के अनुसार व्रत करने से केवल इस लोक के सुख प्राप्त होते हैं तथा मृत्यु के बाद स्वर्ग की प्राप्ति होने से परलोक के सुख भी प्राप्त होते हैं। परंतु ऐसे व्रत यदि निष्कामभाव से केवल परमात्मा की प्रसन्नता के लिए किए जाएँ, तो व्रत करनेवाले को मोक्षपद की तथा परमात्मा की प्रसन्नता की प्राप्ति होती है।

साधारणत: व्रत का अर्थ उपवास माना जाता है। उपवास करने से शरीर के रोग मिटते हैं, तथा आत्मिकशक्ति में वृद्धि होती है। शास्त्रों में कई

प्रकार के व्रतों का विधान है, एकादशी, हरिजयन्ती, आदि को नित्यव्रत कहते हैं। पापों के क्षय के लिए चान्द्रायण आदि व्रत किए जाते हैं, वटसावित्री, जयापार्वती आदि काम्यव्रत कहे जाते हैं। अधिकमास तथा संक्रान्ति आदि को धार्मिक व्रतोत्सव कहते हैं।

पर्व

पर्व रजोगुणप्रधान होते हैं, उनमें सत्त्व और तमस् के गुण गौण होते हैं। ऐसे पर्व मन्दिरों में मनाए जाते हैं तथा वे निश्चित समय पर ही आते हैं। भगवान और उनके महान संतों की जन्मजयन्ती का समावेश पर्व में किया है। ग्रहण तथा तीर्थस्थानों में लगनेवाले कुम्भमेले को भी पर्व कहते हैं। व्रत वैयक्तिक रूप से किया जाता है, जब कि पर्व बड़े समूह में मनाये जाते हैं। ऐसे पर्व सत्संगी-हरिभक्त के लिए एक दूसरे से परिचित होकर सामूहिक आनन्द प्राप्त करने का निराला माध्यम हैं।

उत्सव

व्रत और उत्सव दोनों के लिए 'उत्सव' शब्द का प्रयोग किया जाता है। होली, दशहरा आदि तमोगुणप्रधान लौकिक उत्सव हैं। इनमें लाखों आदमी एकत्र होते हैं। गुजरात में नवरात्रि, बंगाल में दुर्गापूजा, महाराष्ट्र में गणेशोत्सव आदि त्यौहार बड़ी धूमधाम से मनाये जाते हैं।

उपरोक्त व्रतादि को निश्चित समय पर ही मनाया जाता है तथा प्रत्येक व्रतादि के साथ कोई न कोई विशेष कथा जुड़ी हुई होती है। व्रतोत्सवों के निर्णय के लिए श्रीहरि ने वैष्णवाचार्य श्रीवल्लभाचार्यजी के पुत्र गोस्वामी श्रीविठ्ठलनाथजी के द्वारा किए गए निर्णय को विशेषत: मान्य किया है। (शिक्षापत्री : 81, 82) श्रीहरि ने सभी देवों के उत्सवों को मनाने का आदेश देकर अपने हृदय की विशालता तथा समभाव को दिखाया है। (शि. श्लो. 79) एकादशी, शिवरात्रि, रामनवमी, कृष्णाष्टमी, हनुमान जयन्ती, गणेशचतुर्थी, वामन जयन्ती, नृसिंह जयन्ती आदि उत्सवों को श्रीहरि ने विशेष रूप से मान्यता दी है । इस प्रकार उन्होंने सभी अवतारों तथा देवों के प्रति आदर व्यक्त किया है। सभी अवतारों तथा देवों में वे स्वयं अन्तर्यामी रूप से विद्यमान हैं, इसीलिए उन्होंने सभी को अपना ही स्वरूप मानकर तदनुसार उत्सवों की योजना की है।

श्रीहरिजयन्ती और प्रबोधिनी के उत्सव के लिए तो श्रीहरि ने प्रत्येक सत्संगी को बिना निमंत्रण के आने का आदेश दे रखा था। सत्संगिजीवन ग्रंथ में प्रकरण 5 - अध्याय 55 से 61 तक श्रीहरि ने स्वयं संप्रदाय के व्रतोत्सवों का विधिपूर्वक निर्णय दिया है। तदनुसार उत्सवों के दिन भगवान की प्रतिष्ठित मूर्ति को पंचामृत से स्नान कराया जाता है।

●

वार्षिक व्रतोत्सवों पर विचार :

(1) अन्नकूटोत्सव (कार्तिक शुक्ला 1)

विक्रम संवत् का नया वर्ष आज से प्रारम्भ होता है। आज बलि राजा ने अपना सब कुछ परमात्मा के चरणों में समर्पित किया था। इसीसे परमात्मा ने प्रसन्न होकर सभी को बलि राजा के पूजन की आज्ञा दी थी। इसीलिए आज 'बलिपूजा' होती है।

व्रज के ग्वालों द्वारा इन्द्र की पूजा की जाती थी। श्रीकृष्ण भगवान ने उनसे कहा कि 'हमें तो गोवर्धन पर्वत ही सम्पूर्ण समृद्धि देता है। अत: हमें इन्द्र की पूजा न करके गोवर्धन की पूजा करनी चाहिए।' इस आदेश के बाद गोवर्धन पूजा प्रचलित हुई थी। आजकल मिट्टी का छोटा-सा गोवर्धन पर्वत बनाकर लोग प्रतीकात्मक रूप से उसकी पूजा करते हैं। उसी गोवर्धन पूजा को वर्तमान समय में अन्नकूट के रूप में मनाया जाता है। इस दिन प्रात:काल सभी हरिभक्त मन्दिर में जाते हैं। वहाँ पर मंगलमय नववर्ष, आज्ञा-उपासना की दृढ़ता तथा तन-मन-धन के सुखी होने के लिए संतों का शुभाशिष प्राप्त करते हैं।

विश्व के प्रत्येक सनातन हिन्दू मन्दिर में भगवान की मूर्ति के समक्ष अनेक भोज्य पदार्थों का अन्नकूट रचा जाता है। चातुर्मास में तैयार हुई फसल तथा वर्ज्य की गई सागभाजी भगवान को समर्पित करके ही स्वीकार करने की भावना इस उत्सव का मर्म है। उस दिन प्रात: के समय गायों की पूजा होती है तथा भगवान को भोग लगने तक सत्संगी भक्त उपवासी रहते हैं। अंत में अन्नकूट की प्रसादी भक्तों के लिए बाँटी जाती है।

एकादशी व्रत

एकादशी व्रत की उत्पत्ति की कथा पुराणों में मिलती है। भगवान दस

इन्द्रियाँ और ग्यारहवाँ मन अन्तर्मुख करके सोए हुए थे। उसी समय नाड़ीजंघ का लड़का मुरदानव उनके साथ युद्ध करने आ पहुँचा। एकाएक भगवान की एकादश इन्द्रियों के तेज़ से एक कन्या उत्पन्न हुई। मुरदानव ने उस कन्या से कहा कि तुम मुझ से विवाह करो।

कन्या ने कहा कि मेरी प्रतिज्ञा है कि जो कोई मुझे युद्ध में जीत लेगा उसी के साथ मैं विवाह करूँगी।

तत्पश्चात् दोनों में युद्ध छिड़ गया। परंतु भगवान की शक्तिरूपी कन्या ने तलवार से मुरदानव का मस्तक काट डाला। भगवान ने प्रसन्न होकर कन्या को वरदान माँगने के लिए कहा। कन्या ने माँगा कि मैं आपके तेज से उत्पन्न हुई हूँ, अतः मेरे व्रत के दिन कोई भी अन्न न खाए, क्योंकि मैं तपस्विनी हूँ। इसलिए मेरे व्रत के दिन, मन के साथ दस इन्द्रियों का आहार अर्थात् विषयभोग आदि से लोगों को दूर रखना चाहिए।

श्रीहरि ने वचनामृत में एकादशी व्रत की विधि इस प्रकार बताई है कि आज सभी इन्द्रियों का आहार छोड़ देना चाहिए। भगवान के भक्त को यह व्रत हमेशा करना चाहिए। व्रत का पूरा दिन पशुओं की तरह केवल निराहार ही बिता देना काफी नहीं है; लेकिन सारा दिन भगवान का कथाकीर्तन करना-सुनना चाहिए। रात को जागरण करके कीर्तन-उत्सव करना चाहिए। श्रीहरि ने कहा है कि एकादशी के दिन दस इन्द्रियाँ एवं ग्यारहवें मन को उनके अपने विषयों में से वापस खींचकर ब्रह्म-अग्नि में समर्पित कर देना चाहिए।' ब्रह्म-अग्नि का अर्थ होता है ब्रह्मस्वरूप सत्पुरुष। ऐसा करने से अपने ब्रह्मस्वरूप में परब्रह्म प्रकट हो जाता है। (वच. ग. म. प्र. 8)

शिक्षापत्री में श्रीहरि ने एकादशी के व्रत का उद्यापन करने को कहा है, 'एकादशी का व्रत मनोवांछित फल देनेवाला है, उसका उद्यापन करना यानी उपास्य देवता की महापूजा करना तथा पारणा के दिन साधु-सन्तों को भोजन कराना तथा इस शुभ अवसर पर दान देना चाहिए।'

तिथियों के अनुसार महीने में दो एकादशियाँ आती हैं। प्रत्येक एकादशी को निराहार रहकर उपवास करना चाहिए। जो ऐसा करने में असमर्थ हो, वह फलाहार कर सकता है। शास्त्रीजी महाराज ने हरिभक्तों के लिए आदेश दिया था कि उन्हें पाँच तिथियों पर निर्जल उपवास करके भक्ति

अदा करनी चाहिए। 1. हरिजयन्ती (रामनवमी) 2. जन्माष्टमी, 3. देवशयनी (आषाढ़ शुक्ला एकादशी), 4. प्रबोधिनी (कार्तिक शुक्ला एकादशी) तथा 5. परिवर्तिनी एकादशी। इन दिनों में निर्जल उपवास करने का सभी हरिभक्तों को आदेश दिया है। अस्सी साल की उम्र तक यथाविधि व्रत करने की शास्त्रों की आज्ञा है। प्रत्येक एकादशी के भिन्न-भिन्न नाम हैं और उनकी पृथक्-पृथक् कथा है।

(2) प्रबोधिनी एकादशी (कार्तिक शुक्ला 11)

आषाढ़ शुक्ला एकादशी को देवशयनी एकादशी भी कहा जाता है। इस दिन भगवान विष्णु क्षीरसागर में शेषनाग की शय्या पर शयन करते हैं और इसी दिन से पवित्र चातुर्मास का प्रारम्भ होता है। आज भगवान विश्राम करते हुए जाग्रत होते हैं, इसी भावना के साथ इस एकादशी को प्रबोधिनी कही जाती है।

इस व्रत की कथा इस प्रकार है : आषाढ़ मास में भगवान ने युद्ध करके शंखासुर का वध किया था। उस युद्ध की थकान को दूर करने के लिए भगवान क्षीरसागर में शयन करने चले गऐ। उनके जाग्रत होने से भक्तों का आनन्द बढ़ जाता है। आज तुलसीविवाह का प्रारम्भ होता है । तथा चातुर्मास में आरम्भ किए गए व्रतों की अवधि भी समाप्त होती है।

सम्प्रदाय में आज के दिन का महत्त्व अनन्य है। संवत् 1857 में आज के दिन श्रीहरि ने पीपलाणा में भागवती दीक्षा ली थी और उन्होंने सहजानन्द स्वामी एवं नारायण मुनि का नाम धारण किया था। पीपलाणा में आज अन्नकूट का उत्सव होता है। आज ही के दिन जेतपुर में स्वामी रामानन्दजी ने श्रीहरि को अपने स्थान पर बिराजमान किया था।

श्रीहरि के पिता पंडित धर्मदेवजी का जन्म भी आज ही के दिन संवत् 1796 में उत्तर प्रदेश के इटार गाँव में हुआ था। इसीलिए आज वहाँ ठाकुरजी को मुकुट एवं लाल रंग की वेशभूषाओं को निवेदित किया जाता है, राजभोग में घेबर का नैवेद्य रखा जाता है। आज संप्रदाय के प्रत्येक सन्त और हरिभक्त निर्जल उपवास करते हैं तथा धर्मदेव की पूजा की जाती है। संप्रदाय के प्रत्येक मंदिर में इस उत्सव को धूमधाम से मनाया जाता है।

भगवान के जागने से देवों ने आज प्रसन्नता व्यक्त की तथा उत्सव मनाया। इसीलिए आज के दिन को देवदिवाली भी कहते हैं। इस दिन कई

प्रकार के सागभाजी के ढेर लगाकर उसकी शोभा भगवान के समक्ष की जाती है।

(3) कार्तिकी पूर्णिमा

संवत् 1798 में उत्तर प्रदेश में छपैया गाँव में भगवान स्वामिनारायण की माता भक्तिदेवी का जन्म आज ही के दिन हुआ था। इसीलिए चन्द्रोदय के समय भक्तिमाता की पूजा की जाती है। आज तुलसी का भी जन्मदिन कहा गया है, तथा तुलसीविवाह की समाप्ति भी आज के दिन होती है। आज से भगवान को ऊनी वस्त्र धारण करवाते हैं। भगवान के नैवेद्य में आज बैगन का साग अवश्य रखा जाता है। गुजरात के तीर्थस्थान बोचासण के अक्षरपुरुषोत्तम मन्दिर में इस उत्सव को धूमधाम से मनाया जाता है।

रात्रि के समय मन्दिर के चारों ओर दीपकों की पंक्तियाँ लगाई जाती हैं। भगवान के समक्ष खास तौर पर घी के दीये जलाए जाते हैं। एक प्राचीन कथा के अनुसार ब्रह्माजी से वरदान प्राप्त करके त्रिपुरासुर ने सभी पर अत्याचार करना आरंभ किया, तब आज ही के दिन शिवजी ने उसका विनाश किया। इसलिए देवों ने आनन्द विभोर होकर दीपमाला जलाई।

आज के दिन पवित्र नदियों में स्नान करने की बहुत बड़ी महिमा कही गई है। गंगाजी की उत्पत्ति का दिन भी आज ही का माना गया है। इसीलिए आज गंगा में तैरते हुए दीपक बहाये जाते हैं तथा चन्द्र, सूर्य के नीचे आ जाने के कारण सूर्य की प्रखर किरणें चन्द्र के ऊपर पड़ती हैं, इसीलिए आज पित्रों के श्राद्ध करने की महिमा भी कही गई है। प्रत्येक पूर्णिमा को भगवान के सिर पर सुन्दर मुकुट पहनाया जाता है।

(4) प्रकट गुरुहरि जयन्ती (मार्गशीर्ष शुक्ला 8)

सं. 1978 में गुजरात के वड़ोदरा जिले के पादरा तहसील के चाणसद गाँव में प्रगट ब्रह्मस्वरूप प्रमुखस्वामी महाराज का प्राकट्य हुआ था। अत: आज के दिन कई स्थानों में भव्य उत्सव का आयोजन होता है। भगवान ने गीता में मार्गशीर्ष मास को अपना स्वरूप ही बताया है *'मासानां मार्गशीषोऽहम्।'*

(5) धनुर्मास, पर्व

प्राय: जिस दिन मार्गशीर्ष मास के दौरान सूर्य धनराशि में प्रवेश करता है,

उसी दिन से धनुर्मास का आरम्भ होता है। सूर्य वर्षभर में बारह राशियों में क्रम से एक-एक महीना रहकर विभिन्न राशियों में प्रवेश करता है। वह दिन, उस राशि की संक्रान्ति के नाम से पुकारा जाता है। इस प्रकार वर्ष में बारह संक्रान्तियाँ आती हैं। हर संक्रान्ति की समयावधि एक मास की होती है। सुबह जिस मुहूर्त में सूर्य धनराशि में प्रवेश करता है, उसी मुहूर्त में भगवान की मंगला आरती करके, उनको गरम पानी से स्नान कराके, दिव्य वस्त्राभूषण पहनाकर, उनके पास जलती अंगीठी रखकर, शृंगार आरती करके तुरन्त भगवान के सामने राजभोग नैवेद्य रखा जाता है। राजभोग में तिल-चूरमे के लड्डू, मक्खन, रोटी, बैगन का भुर्ता, मूली आदि रखा जाता है।

श्रीकृष्ण भगवान ऋषि सांदीपनि के आश्रम में धनुर्विद्या सीखने के लिए इसी महीने में पधारे थे, इसलिए उनके आगे पुस्तकें और पढ़ाई के साधन रखने की प्रथा भी प्रचलित है।

(6) मकरसंक्रान्ति (14 जनवरी)

सूर्य जब मकर राशि में प्रवेश करता है, तब पौष मास में जनवरी की प्राय: 14 तारीख को मकरसंक्रान्ति पड़ती है। इस दिन तड़के उठकर नदी, सरोवर में स्नान किया जाता है तथा भगवान को तिल के लड्डू का नैवेद्य रखा जाता है। इस पर्व में दान-पुण्य की विशेष महिमा है। इसीलिए इस दिन साधु-सन्त झोली लेकर भिक्षा माँगने जाते हैं।

(7) पौषी पूर्णिमा, व्रत

संवत् 1866 में खेडा जिले के डभाण गाँव में श्रीहरि ने एक महान यज्ञ का आयोजन करके, अक्षरब्रह्म गुणातीतानन्द स्वामी को भागवती दीक्षा प्रदान की थी। इसीलिए आज के दिन वहाँ एक भव्य उत्सव मनाया जाता है।

(8) वसन्तपंचमी (माघ शुक्ला 5)

भगवान श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं कि 'मैं ऋतुओं में वसन्त हूँ।' *ऋतूनां कुसुमाकरः।* सं. 1882 में स्वामिनारायणीय संतकवि सद्गुरु ब्रह्मानन्द स्वामी का जन्म राजस्थान के खाण गाँव में आज ही के दिन हुआ था। सद्गुरु निष्कुलानन्द स्वामी भी आज के दिन जामनगर जिले के शेखपाट गाँव में प्रकट हुए थे। आज ही श्रीहरि ने शिक्षापत्री का लेखन समाप्त किया था। इसी दिन सं. 1921 में अक्षरपुरुषोत्तम उपासना के प्रवर्तक ब्रह्मस्वरूप

स्वामीश्री यज्ञपुरुषदासजी का जन्म खेडा जिले के महेलाव गाँव में हुआ था। आज भी प्रमुखस्वामी महाराज की पावन उपस्थिति में बड़ौदा के पास अटलादरा के गाँव में स्वामिनारायण मन्दिर में शास्त्रीजी महाराज की जन्म जयंती का उत्सव धूमधाम से मनाया जाता है।

आज के उत्सव के बारे में एक कथा प्रचलित है कि आज के दिन श्रीकृष्ण ने अपनी मित्रमण्डली और पटरानियों के साथ गिरनार पर्वत पर अबीर-गुलाल उडाकर भव्य उत्सव मनाया था। आज से फाल्गुन शुक्ला 15 तक भगवान के दिव्य विग्रह को श्वेत वस्त्र पहनाये जाते हैं और वस्त्रों पर गुलाल छिड़का जाता है। प्रतीकात्मक रूप से गेहूँ अथवा धान का पर्वत बनाकर उसकी पूजा की जाती है तथा आम के बौरों का तुर्रा भगवान को पहनाया जाता है। जलेबी आदि मिष्ठान्नों का नैवेद्य भी रखा जाता है।

फाल्गुन शुक्ला 15 के बाद भगवान को केसरी वस्त्र धारण करवाए जाते हैं। इस उत्सव पर श्रीहरि द्वारा मनाये गए वसन्तोत्सवों तथा उनकी दिव्य लीलाओं का स्मरण करके भगवान को खजूर, छुहारा, श्रीफळ, शक्कर, भुने हुए चने, खीर, पेड़े, अंगूर आदि का नैवेद्य समर्पित किया जाता है।

(9) महाशिवरात्रि (माघ कृष्णा 13)

आज के दिन भगवान शंकर एक शिकारी पर प्रसन्न हुए थे' ऐसी पौराणिक कथा है। मध्यरात्रि को बिल्वपत्र एवं कनेर के पुष्पों से शिव पूजा होती है। नैवेद्य में तस्मई एवं वड़े (नमकीन) रखे जाते हैं। भगवान को रंगबिरंगी सुन्दर वस्त्र पहनाये जाते हैं। लोग आज फलाहारी उपवास करते हैं।

(10) पुष्पदोलोत्सव

भगवान श्रीकृष्ण ने गिरनार पर्वत पर यादवों के साथ उत्सव मनाया था। यादवों ने श्रीकृष्ण तथा अर्जुन को फूलों के झूले पर बैठाकर उनका पूजन किया था। इसी दिन कृष्ण और अर्जुन का नरनारायण के रूप में धर्मप्रजापति के द्वारा प्रादुर्भाव हुआ था तथा देवों ने धर्म के आश्रम में श्रीनरनारायण को झूले में झुलाया था। इसी कारण इस उत्सव को दोलोत्सव कहते हैं, झूले को पुष्पों से सजाने के कारण यह उत्सव 'पुष्पदोलोत्सव' कहलाता है। आज के दिन भगवान के समक्ष भक्तजन रंगोत्सव भी मनाते हैं।

भगवान को खीर तथा बेर का भोग लगाया जाता है। साथ-साथ

खजूर, शक्कर, बतासे, चने आदि का भी नैवेद्य लगता है। भगवान के इस प्रसाद को 'फगवा' कहते हैं।

भगवान स्वामिनारायण ने सारंगपुर में हरिभक्तों की प्रार्थना स्वीकार करके वरदान रूप में 'फगवे' दिए थे, उसका स्मरण करके भक्त समुदाय अपने गुणातीत गुरु के पास ऐसे ही सद्गुणों के फगवे प्रसाद के रूप में प्राप्त करते हैं। हमें भक्तचिन्तामणि के प्रकरण 64 में दिए गए 'महाबलवंत माया तमारी' इस प्रार्थना पद को गाकर भगवान को प्रसन्न करना चाहिए।

होली का त्यौहार भक्त प्रह्लाद की भक्ति का स्मरण करके मनाया जाता है। हिरण्यकशिपु ने नारायण की उपासना करने वाले अपने पुत्र को जला देने के लिए अपनी बहन को तैयार किया, जिसे अग्नि का स्पर्श नहीं होता था। परन्तु भक्त की रक्षा हुई और 'होलिका' का सर्वनाश। भक्त की रक्षा को निमित्त मानकर दूसरे दिन भक्त समुदाय रंगोत्सव मनाकर असुर विनाश का उल्लास व्यक्त करते हैं।

आज के दिन गुणातीत गुरु परंपरा के दूसरे आध्यात्मिक गुरु ब्रह्मस्वरूप प्रागजी भक्त (भगतजी महाराज) का जन्म सं. 1885 में हुआ था। गुजरात के भावनगर जिले में महुवा गाँव में वे प्रकट हुए थे। सारंगपुर में उनके जन्मोत्सव के साथ-साथ बड़ी भव्यता से रंगोत्सव का लाभ लेते हैं। आज भी लोग प्रकट ब्रह्मस्वरूप प्रमुखस्वामी महाराज के सांनिध्य में रंगोत्सव का लाभ लेते हैं।

(11) रामनवमी - श्रीहरिजयन्ती (चैत्र शुक्ला 9)

आज के दिन भगवान श्रीरामचंद्रजी का प्राकट्य उत्सव पूरे भारत में बड़ी धूमधाम के साथ रामनवमी के रूप में मनाया जाता है। साथ-साथ इसी दिन पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान स्वामिनारायण अयोध्या के पास छपिया नामक गाँव में सं. 1837 (सन् 1781) में रात को 10.10 बजे प्रकट हुए थे। उनके पिता का नाम श्रीधर्मदेवजी तथा माता का नाम भक्तिदेवी था। सम्प्रदाय में इस उत्सव को अति भव्यता के साथ मनाया जाता है। विशेषकर अहमदाबाद स्थित अक्षरपुरुषोत्तम मन्दिर में इस उत्सव का आयोजन बड़ी धूमधाम से किया जाता है। रात्रि को घनश्याम महाराज को पालने में झुलाकर जनमोत्सव के कीर्तन गाए जाते हैं। यह पालना चैत्र शुक्ला 14 तक रखा जाता है, प्रतिदिन महाप्रभु को केसरयुक्त बिरंज का भोग लगाया जाता है।

श्रीहरि की दिव्य लीलाओं का स्मरण करके संप्रदाय के सन्त और हरिभक्त आज निर्जल उपवास करके भक्ति अर्पण करते हैं।

(12) चैत्री पूर्णिमा, व्रत

संप्रदाय के प्रथम मंदिर बोचासण में आज के दिन स्वामिनारायण मन्दिर में बहुत बड़ा उत्सव मनाया जाता है तथा ठाकुरजी को बूंदी के लड्डू का भोग लगाया जाता है।

(13) नृसिंह जयन्ती (वैशाख शुक्ला 14)

इस दिन संध्या के समय बालभक्त प्रह्लाद की रक्षा के लिए उसके असुर पिता हिरण्यकशिपु का वध करने के लिए भगवान नृसिंहरूप धारण करके पधारे थे। अत: भगवान के श्रीविग्रह को आज नृसिंह का मुखौटा धारण करवाया जाता है। आरती की जाती है तथा खाजा, बड़े का भोग लगया जाता है। भक्तजन आज फलाहारी उपवास करते हैं।

(14) योगी जयन्ती (वैशाख कृष्णा 12)

गुणातीत गुरु परंपरा के तृतीय गुरु ब्रह्मस्वरूप योगीजी महाराज (स्वामी ज्ञानजीवनदासजी) आज के दिन गुजरात के अमरेली जिले के धारी गाँव में सं. 1948 (सन् 1891) को प्रकट हुए थे। यह उत्सव मुख्यत: राजकोट जिले के गोंडल स्थित स्वामिनारायण मन्दिर में बड़ी भव्यता से मनाया जाता है तथा योगीजी महाराज के पावन लीलाचरित्रों एवं उपदेशों का श्रवण-मनन किया जाता है।

(15) रथोत्सव (आषाढ़ शुक्ला 2)

आज उड़ीसा के तीर्थधाम जगन्नाथपुरी में भगवान श्रीकृष्ण, बलराम और सुभद्राजी की काष्ठ की मूर्तियों को विशाल रथ में बिठाकर लाखों भक्त खींचकर उनको यात्रा करवाते हैं। इसीलिए इस उत्सव को 'रथयात्रा' कहते हैं। यह उत्सव सारे वैष्णव एवं स्वामिनारायण मन्दिरों में मनाया जाता है। रथ में काठ के सुन्दर घोड़े भी लगे रहते हैं। ठाकुरजी की चल मूर्तियाँ उसमें बिराजमान की जाती हैं। ठाकुरजी को सुवर्ण के धनुष बाण और रक्तांबर तथा पीताम्बर धारण करवाये जाते हैं। दही-भात के साथ शक्कर तथा गुड़ के लड्डू का भोग लगता है। दोपहर को राजभोग आरती से उत्सव-कीर्तन का प्रारम्भ हो जाता है।

(16) देवशयनी एकादशी (आषाढ़ शुक्ला 11)

इसी दिन से चातुर्मास के विभिन्न व्रतों का प्रारम्भ होता है। पुराणों के अनुसार भगवान विष्णु ने शंखासुर के साथ युद्ध करके उसका विनाश करने के बाद थकावट को दूर करने के लिए क्षीरसागर में चार महीने की अखण्ड योगनिद्रा ग्रहण की थी। भगवान की शयनावस्था के इन चार महीनों में धार्मिक वृत्ति के लोग अनेक प्रकार के व्रत करते हैं। शिक्षापत्री में श्रीहरि ने चातुर्मास के दौरान पालन करने योग्य अनेक नियमों के पालन की आज्ञा दी है।

विशेष नियम : चातुर्मास के दौरान विशेष नियम धारण किए जाते हैं। भगवान की कथा का वाचन-श्रवण करना, उनके गुणों का कीर्तन करना, भगवान की मूर्ति को पंचामृत से स्नान कराके, उनकी महापूजा करना, भगवान के नाममंत्र का जप करना, उनके स्तोत्रों का पाठ करना, उनकी प्रदक्षिणा करना और अन्त में भगवान को साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करना, ऐसे आठ नियमों में से किसी एक नियम का भी विशेष करके भक्तिपूर्वक आचरण करना चाहिए।

पूरे चातुर्मास का व्रत करने में जो असमर्थ हों, उन्हें केवल श्रावण मास के लिए विशेष नियमों का पालन करना चाहिए। चातुर्मास में हरिभक्त एक बार भोजन करें। त्यागियों के लिए चातुर्मास में धारणा-पारणा, चान्द्रायण आदि व्रतों का आदेश दिया गया है। धारणा-पारणा व्रत में एक दिन उपवास तो दूसरे दिन भोजन किया जाता है। चान्द्रायण व्रत में चन्द्र की कला के अनुसार शुक्ल प्रतिपदा को अन्न का एक कौर, दूज को दो कौर इस तरह बढ़ते हुए पूर्णिमा को पन्द्रह कौर भोजन लिया जाता है तथा कृष्णपक्ष की प्रतिपदा से एक-एक कौर घटाते हुए अमावास्या को निर्जल उपवास किया जाता है। चातुर्मास में गन्ना, बैंगन, मूली, मोगरी आदि सामग्री को खाना वर्ज्य कहा गया हैं। ये चीज़ें अन्नकूट के समय भगवान को निवेदित करने के बाद खाने का निर्देश दिया गया है। कार्तिक शुक्ला एकादशी को चातुर्मास के व्रत की समाप्ति होती हैं।

(17) आषाढ़ी पूर्णिमा

इस पूर्णिमा को गुरुपूर्णिमा कहते हैं। वेद को चार भागों में विभक्त करनेवाले तथा महाभारत, पुराण आदि के रचयिता महर्षि वेद व्यासजी की

जन्मजयन्ती होने के कारण आज के दिन को 'व्यासपूर्णिमा' भी कहते हैं। अज्ञानी लोगों के अत:चक्षुओं को ज्ञानरूपी अंजनशलाका के द्वारा खोलने वाले सद्गुरु की पूजा करने का यह महत्त्वपूर्ण उत्सव है। गुरु ही हमें ब्रह्मरूप बनाकर परब्रह्म की सेवा के लिए योग्य बनाते हैं। अत: उनको सम्यक् प्रकार से निर्दोष मानकर मन, कर्म, वचन से उनके साथ एकरूप हो जाना ही उनका पूजन है। यह उत्सव बोचासण स्थित श्री स्वामिनारायण मन्दिर में प्रकट गुरुहरि प्रमुख स्वामी महाराज के सान्निध्य में धूमधाम से मनाया जाता है।

(18) हिंडोला-झूला

शास्त्रों में कहा गया है कि *'सेवायां लौकिकी युक्ति: स्नेहस्तत्र नियामक:'* भगवान की सेवा-पूजा में लौकिक त्यौहार आदि का समावेश करना चाहिए। उसमे कोई शास्त्रीय कारण नहीं है, परंतु स्नेह ही इस में कारणरूप है। आषाढ़ कृष्ण द्वितीया से श्रावण कृष्ण द्वितीया तक लोग जिस प्रकार प्रकृति के सौन्दर्य का आनंद उठाते हैं, उसी प्रकार भगवान को भी फलफूल आदि के अनेक प्रकार के झूले बनाकर झुलाया जाता है। यह उत्सव सभी मन्दिरों में धूम-धाम से मनाया जाता है। भगवान को झूले पर बैठाकर आरती की जाती है, तथा हिंडोले के भक्ति पद गाए जाते है।

(19) जन्माष्टमी (श्रावण कृष्णा 8)

भगवान श्रीकृष्ण का प्राकट्योत्सव आज पूरे भारत में बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है। कंस, जरासंध, शिशुपाल आदि असुरों के विनाश के लिए उन्होंने मथुरा के कारागृह में मध्य रात्रि के समय जन्म धारण किया था। इसी दिन श्रीहरि के गुरु रामानन्द स्वामी का जन्मोत्सव भी मनाया जाता है। बड़ौदा जिले के अटलादरा गाँव में श्री स्वामिनारायण मन्दिर में आज विशेष रूप से गुरुहरि प्रमुखस्वामी महाराज के सान्निध्य में निर्जल उपवास के साथ हज़ारों संत-हरिभक्त यह उत्सव मनाते हैं।

रात्रि के 12 बजे भगवान के जन्म के साथ उनको पंचामृत से स्नान कराया जाता है तथा जन्मोत्सव की आरती उतारी जाती है। भगवान को पाँच थाल एवं पंचजीरी का भोग लगाया जाता है। पालने में भगवान के श्रीविग्रह को श्रावण कृष्णा 14 तक झुलाया जाता है।

(20) गणेशचतुर्थी (भाद्रपद शुक्ला 4)

आज शिवजी के पुत्र गणेशजी का जन्म हुआ था। मन्दिरों में आज मंगलकारी देवता गणपति की मूर्ति प्रस्थापित करके पूजन किया जाता है। रक्ताम्बर धारण करवाके उनके समक्ष चूरमे के 21 लड्डू निवेदित किये जाते हैं। शास्त्रों में आज की रात को चन्द्रदर्शन का निषेध कहा गया है। श्रीहरि ने शिक्षापत्री में गणपति, शिव, पार्वती, विष्णु और सूर्य, इन पाँच देवताओं के पूजन का विधान किया है। अत: आज गणपति के पूजन के अवसर पर भक्तजन श्रीहरि की आज्ञा का पालन करते हैं।

(21) परिवर्तिनी एकादशी - जलझुलनी एकादशी, भाद्रपद शुक्ला 11

इस व्रत को पद्मा एकादशी भी कहते हैं। भगवान श्रीकृष्ण ने गोकुल से दही बेचने के लिए मथुरा जाती हुईं गोपियों से यमुना नदी में नौकाविहार करके चुंगी माँगी थी, उस लीला की स्मृति में यह उत्सव मनाया जाता है। आज भगवान की मूर्ति को नदी, तालाब अथवा समुद्र-स्नान के लिए ले जाते हैं तथा नौकाविहार के बाद भक्तजन जलक्रीड़ा का उत्सव मनाते हैं। पाँच बार पूजन तथा आरती एवं पाँच बार भगवान को नौकाविहार कराया जाता है। आज के दिन ककड़ी का प्रसाद दिया जाता है तथा पालकी में बैठाकर ठाकुरजी की घर-घर पधरावनी की जाती है। भक्तजन आज निर्जल उपवास करते हैं। सौराष्ट्र में सारंगपुर के स्वामिनारायण मन्दिर में यह उत्सव भव्यतापूर्वक मनाया जाता है।

(22) वामन द्वादशी (भाद्रपद कृष्णा 12)

बलिराजा ने त्रिभुवन पर विजय पा ली थी। देवों के लिए कोई स्थान बचा नहीं था। अत: भगवान ने वामन अवतार धारण करके अपने भक्त बलिराजा के पास तीन कदम भूमि माँगी। इन तीन कदम भूमि में उन्होंने बलि का सर्वस्व लेकर उसको पाताल में भेज दिया। बलिराजा के समर्पण की स्मृति में आज का उत्सव दोपहर तक फलाहार करके मनाया जाता है। दोपहर को पीताम्बरधारी ठाकुरजी की आरती होती है तथा पूजन किया जाता है। चूरमे के लड्डू का भोग आज के दिन की विशेषता है।

(23) शरद पूर्णिमा (आश्विन शुक्ला 15)

अक्षरब्रह्म गुणातीतानन्द स्वामी जामनगर जिले के भादरा गाँव में सं.

1841 में आज के पवित्र दिन पर प्रकट हुए थे। राजकोट जिले के गोंडल स्थित अक्षर मन्दिर में आज के उत्सव पर हज़ारों हरिभक्त एकत्र होते हैं। चन्द्र के प्रकाश में रात्रि के समय होनेवाले इस उत्सव में पाँच बार भगवान की आरती उतारी जाती है। भगवान को पंचामृत से स्नान करवाया जाता है और भक्तों को दूध-चिउड़े का प्रसाद दिया जाता है।

इस पूर्णिमा को गुजरात में 'माणेकठारी पूर्णिमा' भी कहते हैं। आज के दिन श्रीकृष्ण ने व्रज में गोप-गोपियों के साथ महारास खेला था। आज भक्तजन भगवान के समक्ष रासलीला गाकर भक्ति समर्पित करते हैं।

(24) हनुमान जयन्ती (आश्विन कृष्णा 14)

आज का दिन हनुमानजी का प्राकट्य दिन माना जाता है। शिक्षापत्री में भी आज हनुमानजी का पूजन करने की आज्ञा दी गई है । हनुमानजी को आज लाल वस्त्र पहनाए जाते हैं। फूलबड़ी, भुजियाँ, वड़े और मालपूए का भोग लगाकर भक्ति की जाती है। तेल, सिन्दूर और आक के फूल तथा उड़द के दाने से हनुमानजी का पूजन किया जाता है। रात को उनके समक्ष दीपमाला जलाई जाती है। वैसे तो आश्विन कृष्णा १२ से लगातार चार दिन तक दीपावली का उत्सव पूरे भारत में मनाया जाता है।

(25) दीपावली (आश्विन कृष्ण अमावस)

विक्रम संवत् का यह अन्तिम दिवस है। आज पूरे भारत में सर्वत्र लक्ष्मीपूजन करके व्यापारी लोग अपने बही-खाते का पूजन करते हैं। भारत का यह मुख्य त्यौहार है। प्रत्येक गाँव में लोग इस त्यौहार को बड़े उत्साह के साथ मनाते हैं। इस उत्सव के साथ एक पुराण कथा कही जाती है कि जब भगवान क्षीरसागर में योगनिद्राधीन थे, तब असुरों से डरकर लक्ष्मीजी कमल में रहने लगी थीं, उसको जगाने के उद्देश्य से आज दीपमाला जलाई जाती है तथा भगवान के समक्ष दीये रखे जाते हैं। भगवान को जलेबी, सूतरफेनी, खाजा, घेबर आदि पकवानों का भोग लगाया जाता है। लोग फटाखे फोड़कर आनन्द की अभिव्यक्ति करते हैं।

(26) पुरुषोत्तम मास - अधिक मास

जिस महीने में सूर्य किसी राशि में प्रवेश नहीं करता और जिस महीने में कोई संक्रांति नहीं होती, ऐसे महीने को अधिक मास कहते हैं। यह

हमेशा 32 महीने, 16 दिन और 4 घड़ियों के बाद आता है। एक पुराण कथा में लिखा है कि बारहों महीनों के अधिष्ठाता देव निश्चित हैं, जब कि भारतीय समय-मापन पद्धति के अनुसार हर 32 महीने के बाद जब एक महीने का समय अलग से निकलने लगा, तो उस महीने को हमारे प्राचीन भारतीय महर्षियों ने उसे निकम्मा समझकर 'मलमास' कहा था। इस महीने के कोई अधिष्ठाता देव निश्चित नहीं थे। अपना यह निंदित नाम सुनकर वह भगवान की शरण में गया। भगवान ने कृपा करके उस मास के अधिष्ठाता देव स्वयं बनने का स्वीकार किया। तबसे यह पुरुषोत्तम मास के नाम से प्रसिद्ध हुआ। अत: इस महीने में किये जानेवाले व्रतों का अधिक फल मिलता है। मन्दिरों में इस महीने में पारायण पर्वों का आयोजन होता है तथा वे एकाशन अथवा धारणा-पारणा आदि व्रत-विशेष का लाभ लेते हैं।

(27) पाटोत्सव

बोचासणवासी श्री अक्षरपुरुषोत्तम स्वामिनारायण संस्था के तत्त्वाधान में निर्मित शिखरबद्ध तथा हरिमन्दिरों में प्रति वर्ष अक्षरपुरुषोत्तम महाराज की प्राणप्रतिष्ठा की तिथि पाटोत्सव के रूप में मनाई जाती है। भगवान को महापूजा विधि के बाद पंचामृत से स्नान करवाया जाता है, मुकुट पहनाया जाता है, एवं विविध पकवानों का भोग लगाया जाता है।

स्वामीश्री शास्त्रीजी महाराज के वरद्हस्तों से की गई मूर्तिप्रतिष्ठा :

(1) बोचासण : सं. 1963 में वैशाख कृष्णा 10
(2) सारंगपुर : सं. 1972 में वैशाख शुक्ला 6
(3) गोंडल : सं. 1990 में वैशाख शुक्ला 10
(4) अटलादरा : सं. 2001 में आषाढ़ शुक्ला 3

स्वामीश्री योगीजी महाराज के करकमलों से की गई मूर्तिप्रतिष्ठा :

(5) गढ़पुर : सं. 2007 में वैशाख शुक्ला 10
(6) अहमदाबाद : सं. 2018 में वैशाख शुक्ला 7
(7) भादरा (गुणातीतनगर) : सं. 2025 में वैशाख शुक्ला 6

स्वामीश्री प्रमुखस्वामी महाराज के वरद्हस्तों से की गई मूर्तिप्रतिष्ठा:

(8) मुम्बई(दादर) : सं. 2040, मार्गशीर्ष शुक्ला 8
(9) महेसाणा : सं. 2051, मार्गशीर्ष शुक्ला 8

(10) लंदन : सं. 2051, श्रावण कृष्णा 10
(11) अमलनेर : सं. 2052, पौष 2
(12) सुरेन्द्रनगर : सं. 2053, कार्तिक 12
(13) सूरत : सं. 2053, मार्गशीर्ष शुक्ला 7
(14) नडियाद : सं. 2054, मागशर वद 10
(15) नवसारी : सं. 2054, मागशर वद 7
(16) राजकोट : सं. 2055, मागशर सुद 7
(17) महेळाव : सं. 2055, महा सुद 5
(18) नैरोबी : सं. 2055, श्रावण वद 3
(19) तीथल : सं. 2056, मागशर सुद 7
(20) आणंद : सं. 2057, मागशर सुद 7
(21) सांकरी : सं. 2057, वैशाख वद 10
(22) धोळका : सं. 2058, कार्तिक सुद 10
(23) भरूच : सं. 2058, कार्तिक सुद 9
(24) दिल्ली : सं. 2059, महा सुद 5
(25) ह्युस्टन : सं. 2060, अधिक श्रावण सुद 8
(26) शिकागो : सं. 2060, अधिक श्रावण वद 8

17. माताजी

अहमदाबाद जिले के साणंद तहसील में छोटा-सा गाँव है - मछियाव। इस गाँव की एक लड़की की शादी उदयपुर के राजपरिवार में हुई थी। एकबार मछियाव का मूलजी नामक एक ब्राह्मण उदयपुर गया, वहाँ उसको रनिवास में जाने की अनुमति मिल गई। उसने वहाँ रहकर राजपरिवार की महिलाओं को भगवान स्वामिनारायण के विषय में बहुत सी बातें कहीं। उदयपुर की महारानी झमकूबाई के कानों तक मूलजी की बातें पहुँची, तो उन्होंने भी श्रीहरि के विषय में जानने की जिज्ञासा व्यक्त की।

गुजरात के वागड़ गाँव की झमकूबाई पूर्व संस्कारों के कारण अत्यन्त भक्तिमय जीवन जी रही थी। उनका पति अर्थात् उदयपुर के महाराणा अत्यन्त दुराग्रही एवं आसुरी प्रकृति के थे। प्रतिदिन अभक्ष्य चीज़ें खाना, शराब पीना

तथा अपनी रानी को भी वैसी ही चीज़ें खाने-पीने का दुराग्रह करना उनकी आदत थी। ऐसी भयंकर पीड़ा से मुक्ति पाने के लिए झमकूबाई ने राज्य-वैभव छोड़कर भगवान के पास चले जाने का निर्णय ले लिया।

वह भले ही स्त्री थीं; परन्तु उनकी आत्मिक शक्ति अनन्य थी। रात को अपने महल अटारियों पर साड़ियाँ लटकाकर वह महल से भाग निकली। पैदल चलकर गंदे नाले से होती हुई महल के बाहर आ पहुँची। आकाश में सूर्योदय का उजाला होने लगा था। उस पर उन्होंने गुजरात के

छोटे से गाँव गढ़पुर का रास्ता भी नहीं देखा था। उनका डर अब तक सच्चा साबित हो रहा था, क्योंकि राणा के घुड़सवार उनको खोजने के लिए उदयपुर की चारों दिशाओं के चप्पे-चप्पे छान रहे थे। अचानक उनके कानों में सैनिकों के घोड़े की टाप सुनाई दी, तो उन्होंने एक खाईं में उतरकर मरे हुए ऊँट के कंकाल में जाकर स्वयं को छिपा लिया।

राणा के घुड़सवार ठीक उनके निकट आकर दूर तक निकल गए। परन्तु वापस लौटते ही उनका सामना झमकूबाई के साथ हो सकता था, इसीलिए झमकूबाई ने सोचा कि जब तक घुड़सवार वापस नहीं लौटेंगे, तब तक मैं इस कंकाल से बाहर नहीं जाऊँगी। इस प्रकार तीन दिन बीत गए। उदयपुर की राजरानी ऐसे भयंकर दुर्गंध से सड़े हुए कंकाल में तीन दिन तक पड़ी रहीं। घुड़सवारों के वापस लौटने की आवाज़ सुनाई दी, तब वह कंकाल से निकलकर आगे की तरफ बढ़ने लगी। रास्ते में एक बनजारे का कारवाँ गुजरात के वड़नगर तक जा रहा था। वे उनके साथ वड़नगर तक जा पहुँची। सौभाग्यवश यहाँ तालब के किनारे पर स्वामिनारायण का भजन करती हुई स्त्रियों का एक संघ मिल गया। वे उन महिला भक्तों के साथ गढ़पुर पहुँच गईं।

श्रीहरि का दर्शन करते ही उनकी आत्मा को परम शान्ति की अनुभूति होने लगी। ब्राह्मण ने जो बातें कही थी, उनको प्रत्यक्ष देखकर तो झमकूबाई आनन्द-विभोर हो गई।

'महाराज! मैं संसार में रहना नहीं चाहती, मुझे केवल आपकी भक्ति ही करनी है।' झमकूबाई ने श्रीहरि के चरणों में बार-बार यही प्रार्थना की। अन्तर्यामी श्रीहरि झमकूबाई को अच्छी तरह पहचान गए। ऐसी तीव्र श्रद्धा और भक्ति देखकर वे अत्यन्त प्रसन्न हुए। उनको वर्तमान (पंचनियम) देकर श्रीहरि ने उनको अपने चरणों में स्थान दिया तथा दरबारभुवन में जीवुबाई के साथ रहकर सेवा करने की आज्ञा दी।

क्षत्रिय होते हुए भी झमकूबाई बड़े निर्मानीभाव से सेवा करने लगीं। जीवुबाई को उनकी पहचान नहीं थीं, अत: वे उनसे कूड़ा-गोबर उठाने का काम भी करवाती थीं। खाने के लिए एक बाजरे की रोटी देती। परन्तु झमकूबाई को किसी विशेष सुविधा की अपेक्षा भी नहीं थी! राजरानी

होकर भी वे दरबार में झाड़ू लगाती, श्रीहरि तथा सन्तों के लिए शुद्ध जल भरकर लाती आदि सेवाओं से उन्होंने श्रीहरि के साथ अन्य भक्तों का मन भी जीत लिया।

एक दिन झमकूबाई दरबारगढ़ के आँगन में झाड़ू लगा रही थीं और श्रीहरि ने वहाँ से गुज़रते हुए यह देखा, तो जीवुबाई को बुलाकर पूछने लगे, 'तुम इनको जानती हो?'

'नहीं महाराज!' जीवुबाई ने कहा।

'उनके घर तुम्हारे जैसी तो दासियाँ हैं। बड़ी समृद्धि एवं राजवैभव को छोड़कर वह भजन करने के लिए यहाँ आई हैं। ये तो उदयपुर की महारानी हैं। तुम उनसे ऐसा काम करवाती हो?' श्रीहरि की बातें सुनकर जीवुबाई ने दोनों की क्षमा-याचना की।

श्रीहरि की आज्ञा से झमकूबाई ने सिर मुँडवाकर सफेद वस्त्र धारण किए थे। महाराज ने सभी को आदेश दिया कि आज से झमकूबाई को सभी 'माताजी' कहकर बुलाना।

एकबार श्रीहरि ने वरदान दिया था कि 'मैं तुम्हारे अन्त समय पर तुम्हें अक्षरधाम में ले जाने के लिए आऊँगा।'

जब वे लाधीबाई के साथ भुज जाकर एक ही कमरे में रहकर श्रीहरि के ध्यान-भजन एवं साधना करने लगी, तब श्रीहरि प्रतिदिन उनको दर्शन देते थे। इन दोनों भक्तों ने एक साथ शरीर-त्याग किया। दोनों का अग्निसंस्कार एक ही चिता में किया गया। इन दोनों मुक्तात्माओं को श्रीहरि एक साथ अक्षरधाम में ले गए।

माताजी जिस कमरे में ध्यान करती थीं, वह कमरा आज भी भुज में सुरक्षित है तथा वह 'माताजी की ओरडी' (कुटीर) के नाम से विख्यात है।

18. राणा राजगर

सौराष्ट्र में 'गोलिड़ा' गाँव है। वहाँ भीम, वशराम, राघव और राणो ये चार भाई रहते थे। वे ब्राह्मणों की राजगुरु ज्ञाति के थे। उनका परिवार इतना धार्मिक था कि उनके पिता ने जगन्नाथपुरी से द्वारिका तक दण्डवत् प्रणाम करते हुए यात्रा सम्पन्न की थी।

एकबार रामानन्द स्वामी उनके गाँव में पधारे। उन्होंने उस ब्राह्मण को कहा था कि 'आपको जब तक प्रकट भगवान नहीं मिलेंगे, तब तक आपका कल्याण नहीं होगा।'

तब ब्राह्मण ने पूछा था कि 'इस कलियुग में भला प्रकट भगवान कैसे मिल सकते हैं?'

स्वामी ने उनको कहा था कि 'तुम्हारे लड़के को प्रकट भगवान मिलने का योग है।' इतना कहकर वे विचरण के लिए चल दिए थे।

सालों के बाद श्रीहरि सरधार गाँव से विचरण करते हुए गोलिड़ा पधारे। यहाँ चारों भाईयों का अपूर्व प्रेम देखकर श्रीहरि ने उनके घर पधरावनी की। उन्होंने श्रीहरि को भोजन कराया तथा वर्तमान (पंचनियम) धारण करके चारों भाई श्रीहरि के आश्रित हो गए।

अचानक श्रीहरि ने प्रसन्न होकर कहा, 'आप सभी कुछ वर माँगिए।'

चारों भाइयों ने विनयपूर्वक वर माँगा, 'हमारे गाँव अथवा हमारे गाँव की सीमा में किसी को भी लेने के लिए यमदूत न आएँ, यही आपके चरणों में प्रार्थना है।'

इन भाइयों के प्रयत्न तथा उनके वर्तन से सारा गोलिड़ा गाँव सत्संग के रंग में रंग गया। लेकिन सत्संग का एक द्वेषी महाराज तथा संतों के विषय में

हमेशा द्वेष करता रहता। उसकी मृत्यु के क्षण, यमदूतों की टोली ने उसको अपने कर्मों का फल देने का निश्चय किया। परन्तु गाँव में प्रवेश करते ही सभी जलने लगे। यमदूतों ने कहा : 'इस गाँव में तो स्वामिनारायण भगवान द्वारा प्रतिबंध लगा है, अतः हमलोग वहाँ नहीं जा सकते।' परन्तु यमदूतों का कहना था कि कुसंगी को शिक्षा देने के लिए हमें अवश्य जाना पड़ेगा।

चारों भाई एक के बाद एक गाँव की रखवाली करते थे, आज भीम और राणा की बारी थी। उन्होंने यमदूतों को देखा कि तुरन्त वापस लौट जाने को कहा। वे नहीं माने, तब दोनों ने लाठियाँ उठा लीं। उनके बिगड़े हुए तेवर देखकर यमदूत तुरन्त वहाँ से भाग गए। भगवान की निष्ठा का इतना बल!

कुछ वर्षों के बाद इन भाइयों में से राघव और वशराम त्यागी बनने के लिए तैयार हो गए; लेकिन उनकी माँ मना कर रही थीं। राणा ने अपनी माँ को समझाया कि तुम भाइयों को अपनी अनुमति दे दो, मैं तुम्हारी सेवा करूँगा।

श्रीहरि ने दोनों भाइयों को दीक्षा देकर क्रमशः राघवानन्दजी एवं विश्वात्मानन्दजी नाम रखे। दोनों भाई 'यम को निकालनेवाले' साधु नाम से प्रख्यात थे।

राणा की मृत्यु का समय निकट आ गया, तो माँ ने उसे पूछा कि बेटा, तू चला जाएगा, तो मेरा क्या होगा?

राणा ने अपनी माँ को वचन दिया कि 'मैं अपने द्वादशाह के दिन आपको अक्षरधाम में ले जाने के लिए आऊँगा।' आश्वासन दिया।

सभी को दर्शन हुआ कि श्रीहरि विमान लेकर राणा को ले जाने के लिए पधारे हैं। उस समय राणा ने सभी से पूछा कि मेरे साथ जिसे अक्षरधाम में आना हो वह चले आए। तब राणा का ही पुत्र अपने पिता के साथ धाम में जाने के लिए तैयार हो गया। ठीक बारह दिन के बाद राणा श्रीहरि को लेकर अपनी माँ को ले जाने के लिए आ पहुँचा। अनेक लोगों ने यह दृश्य देखा, वे सब आश्चर्यचकित हो गए।

राणा राजगर की निष्ठा का यह प्रभाव देखकर हमें भी प्रेरणा लेनी चाहिए कि हमें भी प्रकट भगवान तथा सत्पुरुष की प्राप्ति की ऐसी खुमारी तथा लगन होनी चाहिए।

19. वचनामृत

'वचनामृत' अर्थात् वचनरूपी अमृत। भगवान स्वामिनारायण की वाणी के संकलित ग्रंथ को परमहंसों ने वचनामृत नाम से प्रसिद्ध किया। जिस प्रकार अमृत पीने से व्यक्ति अमर हो जाता है, उसी प्रकार भगवान की वाणी आत्मसात् करने से भक्त को पुनः-पुनः जन्म धारण नहीं करना पड़ता। क्योंकि ऐसे भक्त अक्षरधाम में निवास करते हैं। जिस प्रकार गीता भगवान श्रीकृष्ण की वाणी है, उसी प्रकार वचनामृत भगवान स्वामिनारायण की वाणी का ग्रंथ है। 'वचनामृत' वेद, इतिहास, पुराण आदि सभी ग्रंथों का साररूप ग्रंथ है।

श्रीहरि अपनी वाणी के विषय में कहते हैं कि 'यह जो बात है, उसे मैं देख चुका हूँ तथा अपने अनुभव से भी मैंने उसे सिद्ध किया है और वह समस्त शास्त्रों द्वारा भी प्रामाणित है।' (वच. ग. म. 13)

भगवान स्वामिनारायण ने त्रीस साल तक सत्संग में विचरण किया था। वे जिस गाँव में प्रश्नोत्तर तथा प्रेरणा-वचनों का लाभ देते थे, संतों ने सबकुछ लिख लिया तथा गोपालानन्द स्वामी, नित्यानन्द स्वामी मुक्तानन्द स्वामी और शुकानन्द स्वामी जैसे विद्वान् संतों ने श्रीहरि की वाणी को यथार्थ रूप में संकलित किया।

वचनामृत 6 : विवेकी-अविवेकी

संवत् 1876 में मार्गशीर्ष शुक्ला नवमी (शुक्रवार, 26 नवम्बर, 1819) को श्रीजीमहाराज श्रीगढ़डा-स्थित दादाखाचर के राजभवन में श्वेत वस्त्र धारण करके विराजमान थे। उनके मुखारविन्द के समक्ष सभा में स्थान-स्थान के मुनि एवं हरिभक्त उपस्थित थे।

तब श्रीजीमहाराज ने कहा कि 'इस सत्संग (संप्रदाय) में जो मुमुक्षु विवेकशील होता है, वह दिन-प्रतिदिन आत्मचिंतन करके स्वयं में अवगुण ढूँढता रहता है। भगवान और उनके भक्तों में उसे गुण ही गुण दिखायी पड़ते हैं। भगवान एवं साधु उसके हित के लिए जो कठोर वचन कहते हैं, उन्हें वह अपने लिए हितकर समझता है और दुःखी नहीं होता। ऐसा भक्त दिन-प्रतिदिन सत्संग में महत्ता प्राप्त करता रहता है। परन्तु जो अविवेकी होता है, वह जैसे-जैसे सत्संग करता है, वैसे-वैसे अपने में गुण देखता है

तथा जब भगवान एवं सन्त उसके दोष प्रकट करते हैं, तब वह अभिमानवश सन्त की बातों को उल्टा समझकर सन्त में ही अवगुण देखने लगता है। ऐसे अविवेकी की भक्ति दिन-प्रतिदिन कम होती जाती है और सत्संग में वह प्रतिष्ठाहीन हो जाता है। अत: अपने गुणों के अभिमान का त्याग करके शूरवीरता से भगवान एवं भगवान के सन्त में दृढ़ विश्वास रखे, तो उसका अविवेक दूर हो जाता है और सत्संग में वह महानता प्राप्त करता है।'

॥ इति वचनामृतम् ॥ 6 ॥

सामान्य रूप से हम विवेक तथा अविवेक की परिभाषा इस प्रकार करते हैं कि जो उचित ढंग से शिष्टाचार पूर्वक रहता है, उसे हम विवेकी कहते हैं तथा जो उस प्रकार नहीं रहता, उसे हम अविवेकी कहते हैं।

परन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से विवेक एवं अविवेक की परिभाषा इससे बिल्कुल अलग है। श्रीहरि इस वचनामृत में विवेक एवं अविवेक की आध्यात्मिक व्याख्या दिखाते हैं कि जो अपने अवगुणों को नहीं देखता, परन्तु दूसरों के अल्प अवगुण को भी बड़ा करके बताता है। ऐसे लोग अविवेकी कहलाते हैं। परन्तु जो अपने अवगुण देखता है, वह विवेकी भक्त है। जैसे - सूरदास ने कहा है कि - *'मो सम कौन कुटिल, खल, कामी'* इस प्रकार वे हमेशा अपने ही अवगुण देखते थे।

हमें अपने अविवेक को मिटाने के लिए भगवान के संत का अवगुण नहीं लेना चाहिए। चाहे भले ही वे हमें डाँटें या उलाहना दें। उस समय हमें समझना चाहिए कि वे जो भी कहते हैं, मेरी भलाई के लिए ही कहते हैं। इस प्रकार अहंकार का त्याग करके सन्तों के वचनों पर विश्वास रखेंगे, तो हमारा अविवेक मिट जाएगा और सत्संग में हमारी उन्नति होगी।

20. प्रभाशंकर और देवराम

मण्डप तैयार हो गया था, वर की सत्कार-यात्रा निकल चुकी थी और बाजे-गाजे के साथ बाराती नाच रहे थे। बैलगाड़ियाँ सजकर खड़ी थीं। वरराजा प्रभाशंकर अपने स्वजनों के साथ सज-धजकर गाड़ी में बैठ चुके थे कि अचानक एक संदेशवाहक ने आकर वरराजा के हाथ में एक चिट्ठी थमा दी। चिट्ठी को पढ़कर वरराजा ने फौरन निर्णय लिया और अपने स्वजनों

से कहने लगा कि अब मेरा विवाह नहीं होगा। महाराज ने चिट्ठी भेजी है, वे मुझे वरताल बुला रहे हैं।

प्रभाशंकर का ऐसा आकस्मिक निर्णय सुनकर सभी आश्चर्यचकित रह गए। माता-पिता ने उसे बहुत समझाया; परन्तु प्रभाशंकर ने किसी की एक नहीं मानी। श्रीहरि की आज्ञा के आगे दुनिया ने सारे समारोह अथवा पदार्थ उसके लिए तुच्छ थे।

'विवाह का मुहूर्त तो दूसरा निकलेगा, पर महाराज की आज्ञा फिर नहीं मिलेगी' इतना कहकर वह वड़ताल की ओर निकल पड़ा। वहाँ पहुँचकर उसने श्रीहरि को दण्डवत् प्रणाम किया। अन्तर्यामी प्रभु ने उससे पूछा, 'प्रभाशंकर! जब तुम्हें हमारा संदेश मिला, तुम क्या कर रहे थे?'

प्रभाशंकर ने श्रीहरि को पूरा वृत्तांत सुना दिया। श्रीहरि यह सुनकर प्रसन्न होकर बोल उठे, 'वास्तव में प्रभाशंकर, तुम सच्चे भगत हो।'

खेडा जिले के पीपलाव गाँव के प्रभाशंकर की वृत्ति बचपन से ही प्रभुभक्ति में लग चुकी थी। धर्मनियम के पालन में उनकी अनन्य अभिरुचि थी तथा कथा-श्रवण का तो उनको मानो व्यसन ही था।

संवत् 1866 में डभाण गाँव में श्रीहरि ने भव्य यज्ञोत्सव का आयोजन किया, तब भी ऐसी ही घटना घटी थी। उस समय पीपलाव में ही प्रभाशंकर के विवाह की तैयारी हो रही थी। उस दिन श्रीहरि की ओर से उसको

आमंत्रण मिला और वे माता-पिता के समझाने पर भी अपने विवाह-प्रसंग के लिए गाँव में न नहीं रहे। उनका उत्तर यही था कि 'विवाह तो अगले साल भी हो सकता है; परन्तु महाराज डभाण में दुबारा यज्ञ थोड़े ही करेंगे?'

उसी प्रकार कच्छ के भुज नगर के निवासी देवराम भी ऐसे ही समझदार और ज्ञानी भक्तराज थे।

एकबार बहुत साधारण सी बीमारी में उनकी पत्नी का अवसान हो गया। सभी स्वजन कल्पांत करने लगे। परन्तु देवरामभाई को तनिक भी शोक नहीं हुआ। वे श्रीहरि की मूर्ति के सिवा अन्य सभी व्यक्ति अथवा पदार्थ को मिथ्या समझते थे। महाराज के प्रति उनकी अनन्य प्रीति थी। धर्ममर्यादा के अनुसार परिवार के लोगों ने उनको स्नान करवाया, तब उन्होंने कहा, 'आज यदि कोई और भी मर गया हो तो अभी मुझे बता देना। इस स्नान के साथ-साथ उसका भी स्नान हो जाए!'

भक्तों का कैसा अनन्य समर्पण तथा कैसी विलक्षण सांख्यनिष्ठा!

21. सच्चिदानन्द स्वामी

हरिभक्तों का समुदाय सच्चिदानन्द स्वामी को 'मोटाभाई' (बड़े भैया) कहकर बुलाते थे। गृहस्थाश्रम में थे, तब वे जामनगर के पास मोड़ा गाँव में रहते थे। उनका नाम था - 'दाजीभाई'। पूरे पाँच हाथ लम्बे और तगड़े आदमी थे। वाघेला-क्षत्रिय जाति के दाजीभाई हमेशा जडभरत की तरह उन्मत्त दशा में ही रहते थे। उनके स्वजनों को उनका इस तरह रहना पसंद नहीं था।

एकबार श्रीहरि का दर्शन करके उनकी चित्तवृत्ति श्रीहरि की मनोहर मूर्ति में स्थिर हो गई। त्यागी बनने की उनकी इच्छा तीव्र हो गई। वे बार-बार घर से भागकर श्रीहरि के पास चले आते। परिवार के लोगों ने अन्त में हारकर उनके पैरों में बेड़ियाँ ड़ालकर उनको एक कमरे में बन्द कर दिया। दाजीभाई तो वहाँ भी बड़े धैर्यपूर्वक श्रीहरि का स्मरण करने लगे। कुछ देर के बाद उनको अपने कमरे में श्रीहरि का दर्शन हुआ। उन्होंने दाजीभाई के पैरों की बेड़ियाँ तोड़ डालीं और वे गढ़पुर के लिए निकल गए।

यहाँ श्रीहरि ने उनको दीक्षा देकर 'सच्चिदानन्द' नाम रखा। श्रीहरि के प्रति उनके हृदय में अपार प्यार था। उनकी वृत्ति निरन्तर श्रीहरि के

स्वरूप में रहा करती। उनका वियोग होते ही स्वामी के रोमरोम से लहू के कण फूट निकलते थे, कभी-कभी तो महाराज से अलग होते ही वे बेहोश भी हो जाते थे।

उन्होंने श्रीहरि की आज्ञा से राधावाव खुदवाई थी तथा वहाँ बगीचा बनाया था। यहाँ से वे हमेशा पुष्पमाला तथा फूलों के अन्य आभूषण बनाकर श्रीहरि के लिए समर्पित करते।

उनमें जैसा प्रेम था, उतने ही वे दृढ़ वैराग्यवान भी थे। वे कहते थे कि यदि मेरे पैर काट दिये जायें, तो भी मैं टूटे पैरों से शरीर को घसीटते हुए वहीं जाकर बैठूँगा, जहाँ साधुओं के भोजन की जूठन डाली जाती है, वह जूठन खाकर भी मैं सत्संग में पड़ा रहूँगा; परन्तु सत्संग कभी नहीं छोडूँगा।

एकबार चातुर्मास में उन्होंने श्रीहरि के समक्ष ऐसा नियम ले लिया कि 'मैं चार महीने तक सोऊँगा नहीं, तथा रातभर पालथी लगाकर दोनों जांघों पर दो पत्थर रखकर श्रीहरि का ध्यानभजन करता रहूँगा।'

एकबार अनावृष्टि के कारण अकाल पड़ा था। हरिभक्तों ने वर्षा के लिए श्रीहरि के चरणों में प्रार्थना की। परन्तु महाराज ने कहा, 'आज तो इन्द्र कोपायमान है, अतः वर्षा नहीं होगी।'

हरिभक्त घबड़ाये और गए सच्चिदानन्द स्वामी के पास। स्वामी ने कहा, 'बिना महाराज की इच्छा के, मैं कुछ भी नहीं कर सकता, यदि वे

नाराज़ हो जाएँगे, तो हमारा अच्छा कभी नहीं होगा।'

फिर भी हरिभक्तों का आग्रह जारी रहा कि 'महाराज यदि नाराज होंगे तो आपका अपराध हम अपने सिर पर ले लेंगे; परन्तु आप हमारे दु:ख की ओर देखिए और कृपा करके उपाय कीजिए।'

स्वामी ने दया करके समाधि लगाई और इन्द्र के पास पहुँचकर लात मारकर उसे जगाया और बरसने का आदेश दिया। फलस्वरूप सारी धरती भारी वर्षा के कारण पुलकित हो उठी।

श्रीहरि समझ गए कि सच्चिदानन्द स्वामी ही ऐसा कर सकते हैं। उन्होंने तुरन्त स्वामी को विमुख करार दिया। स्वामी तो घेला नदी के उस पार जाकर बिना खाए-पीए भजन करने लगे। एक दिन, दो दिन वैसे ही बीत गए। प्यास के कारण गला सूख रहा था, परन्तु उन्होंने भजन नहीं छोड़ा, न ही पानी पिया।

इस ओर अक्षर कुटीर में स्वयं श्रीहरि प्यास के मारे परेशान हो रहे थे। ब्रह्मचारी उनको बार-बार पानी पिलाते रहे पर श्रीहरि की प्यास शान्त नहीं हुई। अंत में उन्होंने कहा, 'जाओ, उसको, अरे उस प्यासे को पानी पिलाओ।'

रतनजी और मियांजी श्रीहरि के कहने का मर्म समझ गए। वे तुरन्त प्रासादिक जल लेकर दौड़े और घेला के उस पार बैठे हुए सच्चिदानन्द स्वामी को पानी पिलाया, तब जाकर श्रीहरि की प्यास शान्त हुई। कैसा अनुपम ऐक्य था, भक्त और भगवान का! अब वे श्रीहरि के साथ रहने लगे।

श्रीहरि ने जब स्वधामगमन का संकल्प किया, तब सच्चिदानन्द स्वामी उनके पहले ही अपने प्राण छोड़कर अक्षरधाम में चले गए!

महाराज ने उनको आज्ञा दी, 'तुम वापस अपनी देह में लौट जाओ।'

स्वामी कहने लगे, 'महाराज, आपके बिना मुझसे सशरीर नहीं रहा जाएगा। अत: आप मुझे यहीं रखने की कृपा कीजिए।'

उनकी प्रार्थना सुनकर श्रीहरि ने कहा, 'लीजिए यह प्रासादिक जल और मैं तुम्हें छ: महीने में अक्षरधाम ले जाऊँगा।' श्रीहरि के वचन सुनकर स्वामी देह में वापस लौटे, परन्तु उस दिन से उन्होंने अन्न-जल का त्याग किया। कुछ समय के बाद श्रीहरि उनको अपने धाम में ले गये। ऐसा था सच्चिदानन्द स्वामी का अनन्य स्नेह!

22. सुभाषित

अयं निजः परो वेत्ति गणना लघुचेतसाम् ।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ॥1॥

यह मेरा है, यह पराया है, ऐसी विचारधारा छोटे दिलवालों की होती है। उदार दिलवालों के लिए तो सारी पृथ्वी ही एक परिवार है। (1)

गंगा पापं, शशी तापं, दैन्यं कल्पतरुस्तथा ।
पापं, तापं च दैन्यं घ्नन्ति सन्तो महाशयाः ॥2॥

गंगा पाप को, चन्द्र ताप को और कल्पवृक्ष गरीबी को हटाता है। उदार दिलवाले सत्पुरुष पाप, ताप एवं गरीबी तीनों को मिटाते हैं। (2)

मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम् ।
मनस्यन्यत् वचस्यन्यत् कर्मण्यन्यत् दुरात्मनाम् ॥3॥

महापुरुषों के मन, वचन और कर्म में एकता होती है। दुष्ट पुरुषों के मन, वचन और कर्म में भिन्नता होती है। (3)

प्रसंगमजरं पाशमात्मनः कवयो विदुः ।
स एव साधुषु कृतो मोक्षद्वारमपावृतम् ॥4॥

(भागवत : 3-25-20)

जीव को अपने आत्मीय स्वजनों के प्रति जितनी आसक्ति है, उतनी यदि भगवान के एकान्तिक भक्त, संत के प्रति हो जाए, तो जीव के लिए मोक्ष का द्वार खुल जाता है। (4)

न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः ।
ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः ॥5॥

(भागवत : 10-84-11)

'तीर्थ केवल जलरूप है और देव केवल मिट्टी अथवा पत्थर हैं' ऐसा नहीं है। उनमें कुछ दैवत्व अवश्य है, पर वे बहुत समय सेवन करने पर ही पवित्र करते हैं, जब कि साधुपुरुष के दर्शनमात्र से (अतिशीघ्र) पवित्रता प्राप्त होती है। (5)

श्रद्धावान् लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः ।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ॥6॥

जो व्यक्ति श्रद्धावान्, गुरु की उपासना में तत्पर और जितेन्द्रिय है, वही आत्मज्ञान प्राप्त करता है और आत्मज्ञान प्राप्त करनेवाला ही कैवल्य मुक्ति को प्राप्त कर सकता है। (6) (गीता 4-39)

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥7॥

तुम सभी धर्मों की शरण छोड़कर केवल मेरी शरण में आ जाओ। मैं तुमको सभी पापों से मुक्त कराऊँगा। शोक करने की आवश्यकता नहीं है। (7) (गीता 18-66)

कार्यं न सहसा किंचित् कार्यो धर्मस्तु सत्वरम् ।
पाठनीयाऽधीतविद्या कार्यः संगोऽन्वहं सताम् ॥8॥

(शिक्षापत्री : 36)

बिना सोचे कुछ भी नहीं करना चाहिए। धर्मसम्बन्धी कार्य (बिना सोचे ही) शीघ्र करना चाहिए। जो विद्या हम पढ़ चुके हैं, वह औरों को पढ़ानी चाहिए और हमेशा साधुओं का समागम करना चाहिए। (8)

धर्मेण रहिता कृष्णभक्तिः कार्या न सर्वथा ।
अज्ञ-निन्दाभयान्नैव त्याज्यं श्रीकृष्णसेवनम् ॥9॥

(शिक्षापत्री : 39)

भगवान की भक्ति भी यदि धर्मरहित हो तो वह नहीं करनी चाहिए और मूर्ख मनुष्य की निन्दा के डर से भगवान की भक्ति का त्याग नहीं करना चाहिए। (9)

अपि भूरिफलं कर्म धर्मापेतं भवेद् यदि ।
आचर्यं तर्हि तन्नैव धर्मः सर्वार्थदोऽस्ति हि ॥*10*॥

विशेष फल देनेवाला काम भी यदि धर्मरहित हो, तो नहीं करना चाहिए, धर्म (स्वयं) चारों पुरुषार्थों को सिद्ध करने की क्षमता रखता है। (10)

23. जालमसिंह बापू

'स्वामी! इसमें तो जान का खतरा है।' मुंडन करवाते हुए श्रीहरि ने मुक्तानन्द स्वामी से कहा।

गुजरात के सुरेन्द्रनगर जिले के शियाणी गाँव से श्रीहरि तावी गाँव की

ओर जा रहे थे। बीच में एक सुन्दर स्थान पर श्रीहरि नाई के पास मुंडन करा रहे थे। नाई का हाथ भारी था।

जब जालमसिंहजी ने श्रीहरि की पीड़ा देखी, तो उन्होंने तुरन्त निवेदन किया, 'महाराज! आपकी आज्ञा हो, तो अभी मैं अपने गाँव से अच्छा नाई ले जाऊँ।'

श्रीहरि ने सम्मति दी और बापू तुरन्त घोड़ी पर सवार होकर 'देवलिया' गाँव की ओर निकल पड़े।

तावी से देवलिया तीन कोस की दूरी पर है। श्रीहरि ने सोचा कि जालमसिंह के आने में देर होगी, इससे तो यह बेहतर है कि हम ही देवलिया चले जायें। करीब आधा रास्ता पार करके वे डोली तलावड़ी पहुँचे तो श्रीहरि पीपल के पेड़ के नीचे सभाजनों के बीच बिराजमान थे। उस ओर बापू ने देवलिया पहुँचकर नाई को बुलाया। उस्तरे की धार निकलवाकर जरूरी सामान का थैला काँख में दबाकर नाई चलने के लिए तैयार हो गया।

जालमसिंह तो घोड़ी पर बैठे थे, परन्तु नाई अपना थैला लेकर घोड़ी के पीछे दौड़ रहा था। जालमसिंह ने सोचा कि इस प्रकार तो जल्दी से नहीं पहुँच

पाएँगे। उन्होंने तुरन्त उस नाई का थैला अपने कन्धे पर लटका लिया और नाई से कहा कि अब घोड़ी का पायदान पकड़कर जल्दी से दौड़ना शुरु करें।

आधा रास्ता पार करने पर उन्होंने देखा, तो एक तालाब के किनारे श्रीहरि सभा में बिराजमान थे। बापू तुरन्त घोड़ी से उतरकर श्रीहरि के पास पहुँचे और हाथ जोड़कर खड़े रहे। उसी समय पूर्णानन्द स्वामी भी सभा के पीछे आकर खड़े रह गये। वैसे वे श्रीहरि के साथ ही थे, परन्तु धीमी चाल के कारण पिछड़ गये थे। सभा में काफी भीड़ थी, इसलिए पूर्णानन्द स्वामी को बैठने के लिए योग्य स्थान मिलना असंभव था।

अन्तर्यामी श्रीहरि उनके मन की हालात समझ गए। उन्होंने तुरन्त भरी सभा में प्रश्न पूछा कि आपमें से किसीने मूर्तिमान अहंकार को देखा है? सब आश्चर्यपूर्वक ऐसा विलक्षण प्रश्न सुन रहे थे। श्रीहरि स्वयं कहने लगे, 'देखो, ये जमीनदार-ठाकुर; जिसको सहज ही अहंकार होना चाहिए, वे नाई का थैला काँख में दबाकर निर्मानी बनकर खड़े हैं और ये सन्त, जिसको हमेशा अहंशून्य भाव से रहना चाहिए, परन्तु वे 'मान' की भीख माँगते-फिरते हैं।' इतना कहकर उन्होंने पूर्णानन्द स्वामी की ओर संकेत किया। स्वामी तो मानभंग होने के कारण उसी पल वहाँ से श्रीहरि को छोड़कर निकल गये।

पीपल के नीचे श्रीहरि ने मुंडन करवाया। सन्तों-हरिभक्तों के साथ उन्होंने डोली तलावड़ी में स्नान किया तथा बापू के आग्रह से संघ के साथ वे देवलिया पधारे।

दरबार में प्रवेश करते ही उन्होंने देखा कि जालमसिंहजी की बहन केशाबाई चौक में गेहूँ फैला रही थीं। श्रीहरि ने पूछा : 'बाई! क्या कर रही हैं?' 'महाराज, गेहूँ में कीड़े पड़ गए हैं, तो धूप में फैलाती हूँ।'

'जाइए, तुम्हारे घर आज से अनाज में कभी कीड़े नहीं पड़ेंगे।' एकाएक श्रीहरि ने उनको प्रसन्नतापूर्वक आशीर्वाद दिया।

उस समय केशाबाई ने पूछा, 'महाराज! इसमें हमको क्या लाभ?'

श्रीहरि कहने लगे, 'तुम्हारे दरबार में जो भी छोटे-बड़े जीव हैं, वे जब शरीर छोड़ेंगे, तब हम उनको अक्षरधाम में ले चलेंगे।'

महाराज का यह वरदान सुनकर केशाबाई और जालमसिंहजी दोनों गद्‌गद हो गए और उनके चरणों में गिर पड़े।

24. अक्षरमूर्ति गुणातीतानन्द स्वामी की बातें

[1]

स्वामिनारायण हरे! स्वामी ने बात कही कि –

'एकबार किसी व्यक्ति ने लाख रुपया खर्च के बुद्धि खरीदी। उसी प्रकार अनेक प्रकार की मोक्ष की बुद्धि भी सत्पुरुषों से सीखी जाती हैं।'

एक राजकुमार की अपने राज्य के प्रधानपुत्र से घनिष्ठ मित्रता थी। दोनों शिकार को निकले, लेकिन मीलों दूर पहुँच गए। शाम ढल चुकी थी। दोनों पेड़ के नीचे सो गए। सुबह राजकुमार को जोरों की भूख लगी और उसने प्रधानपुत्र को कहीं से भोजन खोजने भेजा। प्रधानपुत्र चल दिया और एक राज्य के किले के द्वार पर पहुँचा, जो कि थोड़ी देर के बाद खुला।

प्रधानपुत्र ने शहर में कदम रखा ही था कि उसी क्षण उसकी वधाई की गई और उसी को नया राजा चुन लिया गया, क्योंकि उस राज्य का कोई वारिस नहीं था। राजा ने अपने को नि:सन्तान पाकर यही योजना बनाई थी।

इस ओर राजकुमार भूखा मरा जा रहा था। प्रधानपुत्र बहुत देर के बाद भी नहीं आया तो राजकुमार उसी दिशा की ओर चल पड़ा। नगर में पहुँचा तो देखा कि पूरे नगर में भारी चहल-पहल है। क्योंकि नये राजा की सवारी जो निकलने वाली थी।

इसी शहर में एक दुकान पर राजकुमार ने अजीब सी सूचना लिखी हुई देखी, 'यहाँ बुद्धि बिकती है।' राजकुमार ने अपनी लाख रुपये की अंगुठी निकालकर बुद्धि खरीदना चाहा, तब दुकानदार ने एक पर्ची पर लिख दिया, 'अपने से छोटा भी हो और उसे बड़ी सत्ता मिल जाय, तो उसके आगे नम्रता से पेश आना चाहिए।'

राजाकुमार चिट्ठी लेकर चला। कुछ ही क्षणों में नये राजा की सवारी नज़दीक आ गई और राजकुमार ने देखा कि 'यह तो मेरा मित्र है, प्रधानपुत्र! खाना लेने के बदले हाथी पर कैसे चढ़ गया?!' दो क्षण के लिए तो उसका खून खौल उठा, लेकिन वह शिक्षा याद आई, जो दुकानदार से मिली थी। उसने तुरन्त ही कुर्निश बजाकर-झुककर प्रधानपुत्र का अभिवादन किया। परिणाम यही निकला कि प्रधानपुत्र ने जाकर कुमार को बुलाया, 'इसीको राज्य करने का अधिकार है' ऐसा कहकर अपने राजसिंहासन पर राजकुमार को बिठाया गया।

जिस प्रकार राजकुमार ने बुद्धि खरीदी और उसका उपयोग किया, तो उसे राज्य का शासन प्राप्त हुआ। उसी प्रकार सत्पुरुष के द्वारा हमें भी मोक्ष के लिए बुद्धि प्राप्त होती है। अत: हमें बुद्धियोग प्राप्त करने के लिए सत्पुरुष के साथ आत्मबुद्धि करना चाहिए। ताकि राजकुमार को राज्य मिला, उसी प्रकार हमें भी अक्षरधाम की प्राप्ति हो सके।

[2]

स्वामिनारायण हरे! स्वामी ने बात कही कि -

'करोड़ रुपये खर्च करने पर भी ऐसे साधु नहीं मिलेंगे और करोड़ों रुपये देने पर भी ये बातें नहीं मिलेंगी तथा करोड़ों रुपये देने पर भी यह मनुष्यदेह नहीं मिलेगी। हम सबने भी करोड़ों जन्म धारण किए हैं, परन्तु कभी भी ऐसा समय और ऐसा संयोग नहीं मिला, नहीं तो यह शरीर क्यों धारण करते?'

धर्म, ज्ञान, वैराग्य और माहात्म्य सहित भक्ति के सद्‌गुण जिस संत के

पास हो, ऐसे सन्त का मिलना आजकल दुर्लभ है। ऐसे संत की बातें सुनना भी दुर्लभ हैं। उनकी बातों में हमारा अज्ञान मिटाने की शक्ति होती है, इसी प्रकार मनुष्यदेह भी दुर्लभ है। क्योंकि 84 लाख जन्मों के बाद मनुष्य-जन्म मिलता है।

एक अन्धे आदमी से राजा का अपराध हो गया। राजा ने उसको दंड देते हुए कहा, 'इस शहर के चारों ओर बारह कोस का किला है, उसमें से बाहर निकलने के लिए सिर्फ़ एक ही खिड़की है, तुम किले की दीवार पर हाथ रखकर चलते जाओ, खिड़की मिलते ही तुम बाहर निकल जाना।'

अन्धे ने चलना आरम्भ किया, खिड़की आने को थी ही कि उसको सिर पर खुजली आई। उसने दीवार से हाथ उठा लिया और चलते-चलते ही खुजलाने लगा, उतने में खिड़की निकल गई, उसने जहाँ हाथ रखा, वहाँ दीवार थी, उसे फिर एक बार बारह कोस का चक्कर काटने की नौबत आ गई।

हमारी भी बिल्कुल ऐसी ही दशा है। इतनी दुर्लभ मनुष्यदेह मिली है,

उसमें भी गुणातीत सन्त की प्राप्ति हुई हैं। हम बड़े सौभाग्यशाली हैं। परन्तु यदि हमने उनको पहचाना नहीं, तो हमारी दुर्दशा भी वैसी ही होती है, जैसी अंधे की हुई। हमारे सिर से कभी जन्म-मरण का चक्र दूर नहीं होगा।

[3]

स्वामिनारायण हरे! स्वामी ने बात कही कि :

'संग किए बिना सत्संग का सच्चा सुख नहीं मिलता। जैसे भोजन तो मिल जाए, परन्तु उसे खाए बिना उसका सुख नहीं मिलता, इसी प्रकार कपड़े-गहने इत्यादि मिल जाएं, परन्तु बिना पहने, उनका भी कोई सुख नहीं मिलता, ऐसे ही सच्चे साधु के संग बिना सत्संग का सच्चा सुख प्राप्त नहीं होता।'

जो सत्संग शिव-ब्रह्मादि देवताओं को भी दुर्लभ है, ऐसा सत्संग हमें प्राप्त हुआ है; परन्तु यदि हमने ऐसे सत्संग का लाभ नहीं लिया, तो गंगा के घाट पर खड़े रहकर पानी नहीं पीनेवाले प्यासे की तरह हम भी मूर्ख ही ठहरेंगे। चन्दन वृक्ष के साथ लिपटकर रहनेवाले साँप का ज़हर इसीलिए नहीं जाता कि वह अपना मुँह चंदन से दूर रखता है। हम भी यदि सत्संग (सम्प्रदाय) में आने पर भी सत्संग (ज्ञानवार्ता) का लाभ नहीं लेते, तो हमारे अंत:करण की वासना का ज़हर नहीं मिट सकता।

एक गाँव था। यहाँ एक बनिया छोटी-सी दुकान में परचून तेल का व्यापार करता था। पली, दो पली तेल के व्यापार में वह पूरा दिन उलझा रहता था, परन्तु वह कभी आर्थिक रूप से सुखी नहीं हुआ। अचानक एक महात्मा उसकी दुकान पर आ पहुँचे। वे कहीं तप करने जा रहे थे। उनके पास एक 'स्पर्शमणि' थी। उन्होंने यह स्पर्शमणि उस बनिये के यहाँ धरोहर के रूप में रखने का निर्णय किया और कहा : 'देख बनिया, यह मणि बड़ा चमत्कारी है। उसका स्पर्श होते ही लोहा सोना बन जाता है, तुम इसका उपयोग करना, तुम्हारी दरिद्रता अवश्य मिट जाएगी। तुम अपने पास इसे संभाल के रखना, लौटते समय मैं ले लूँगा।'

बनिया अपने व्यापार में व्यस्त था, उसने महात्मा की बात बिना सुने ही कह दिया कि 'अच्छा, जो भी हो आप उस गोखे में रख दीजिए।' महात्मा तो आले में मणि रखकर चलते बने। इस बनिये को करीब छह महीने तक अपने काम से फ़ुरसत नहीं मिली और महात्मा द्वारा दिए गये

मणि की बात ही वह भूल गया। महात्मा जब वापस लौटे, तो यही सोचते थे कि वह बनिया तो मालामाल हो गया होगा, परंतु महात्मा जब उस दुकान पर आये तो बनिया उसी हालत में था। महात्मा ने जब मणि लौटाने को कहा तो उसने उत्तर दिया, 'महाराज! आपने जहाँ रखी हो, वहीं से ले लीजिए।'

महात्मा ने आले में झाँका तो मणि पर धूल की पर्त छा गई थी।

वे सोचने लगे कि बनिया मणि की महिमा नहीं जानता है। उन्होंने बनिये को उलाहना देते हुए कहा : 'तू पैसे-दो पैसे के व्यापार में लगा रहा और इस मणि को भूल गया, परंतु देख इसका चमत्कार।' कंगाल बनिये की दूकान में लोहे का एक टुकड़ा तक नहीं था। उसने इधर-उधर से माँगकर सेर-डेढ़ सेर लोहा इकट्ठा किया। महात्मा के पारसमणि छुआते ही सारा लोहा सोने बदल गया। बनिया तो यह देखकर खुशी के मारे पागल हो उठा और महात्मा से कहने लगा : 'महाराज! यह मणि आप मेरे लिए छोड़ जाइये ।'

महात्मा ने कहा, 'मूर्ख! छः महीने तक यह तेरे घर ही पड़ी रही थी!

अब तो तेरा भाग्य।' इतना कहकर वे मणि लेकर चल दिये।

हमें बिल्कुल स्पर्शमणि के समान सत्संग प्राप्त हुआ है, परंतु प्रमाद और आलस्य के कारण हम उसका लाभ नहीं उठाते रहे। मन, वचन और कर्म से यदि हम सत्संग करेंगे तो हम सुवर्ण जैसे भी उत्तम बन जाएँगे।

[4]

स्वामिनारायण हरे! स्वामी ने बात कही कि –

'भगवान ने कहा है कि 'मैं जितना सत्संग द्वारा वश में होता हूँ, उतना तप, यज्ञ, योग, व्रत, दान आदि साधनों द्वारा नहीं होता।' वह सत्संग क्या? तो सत्संग तो परम एकान्तिक सन्त को हाथ जोड़ना और वे कहें वैसा ही करना, वही है।'

श्रीमद् भागवत के ग्यारहवें स्कन्ध का यह श्लोक है। इस लोक में सभी ने भिन्न-भिन्न साधनों से आत्मकल्याण की राह बताई है। कोई तप के द्वारा, दान के द्वारा, अष्टांग योग के द्वारा भगवान को प्रसन्न करने का प्रयास करता है। ये सारे साधन आवश्यक हैं, परन्तु ऐसी साधना से वर्षों के बाद कल्याण होता है, परंतु भगवान तुरंत वश में नहीं होते।

एक गाँव में दो भाई रहते थे। छोटा भाई सत्संग को बहुत पसंद करता था, जब कि बड़ा भाई यात्रा करना पसंद करता था। वे कई बार यात्रा के लिए छोटे भाई को आग्रह करते थे, लेकिन वह मना कर देता। बड़े भाई ने एक बार जब बहुत आग्रह किया, तो छोटे भाई ने उत्तर दिया : 'मैं फिलहाल नहीं जा सकता, लेकिन मेरे बदले मेरी इस तुम्बी को आप अपने साथ अवश्य यात्रा करवाना।' बड़े भाई ने उस तुम्बी को पूरी यात्रा करवाई। वे तुम्बी को मन्दिरों में गर्भगृह तक पहुँचाकर भगवान के चरणारविंद को छुआते थे। पवित्र नदियों में भी उस तुम्बी को गोता लगवाते थे। यात्रा करके बड़े भाई घर लौटे, तब छोटे भाई ने उनको भोजन के लिए निमंत्रण दिया। भोजन के समय उसने उसी तुंबी में पीने का पानी रखा। बड़े भाई ने उसमें से एक घूँट पानी पीते ही थूक दिया और कहने लगे – 'अरेरे, बहुत कडुआ है यह पानी!' फिर उसने दूधपाक खाया परंतु मुँह में से कडुआहट नहीं मिटी! अंततः एक हप्ते के बाद कडुआहट गई।

दुबारा छोटे भाई ने अपने बड़े भाई को भोजन के लिए बुलाया। इस समय भी उसी तुम्बी में भरकर पीने के लिए पानी दिया। बड़े भाई तुरन्त

बोल उठे कि भाई, मैं इस तुम्बी का पानी नहीं पीऊँगा। छोटे भाई ने भोजन के बीच उसी तुम्बी का पानी पिया और बड़े भाई को भी वह पानी पीने के लिए आग्रह किया। बड़े भाई ने वह पानी पिया और इस समय मीठा लगा तो उन्होंने उसका कारण पूछा।

छोटे भाई ने बताया, 'इस तुम्बी की एक सन्त से भेंट हो गई, उन्होंने इसके भीतर का कडुआ गर्भ निकालकर इसको स्वच्छ कर दिया, फलस्वरूप उसकी कडुआहट निकल गई। उसी तरह हमारे भीतर काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि शत्रुओं के कारण जो कडुआहट भरी पड़ी है, वह यात्रा में जाने से नहीं निकलेगी। वह तो सन्त की संगति से ही निकलती है।'

इस दृष्टान्त से समझा जा सकता है कि सत्पुरुष का संग ही सत्संग है। एकान्तिक सन्त की प्राप्ति होने पर उनके समक्ष अपना सयानापन छोड़ देना चाहिए। दीन-आधीन हो जाना चाहिए। यह निश्चय कर लेना चाहिए कि 'ये ही मेरे मोक्षदाता हैं।' ऐसा निश्चय करना उनको वन्दन करने के बराबर है। इसके बाद वे जो भी कुछ कहें तदनुसार मन, वचन, कर्म से बरतना चाहिए।

औषधालय में कितनी दवाइयाँ होती हैं? उनमें से हम अपने आप मनमानी दवाई ले लें तो सम्भव है, उसका परिणाम बुरा भी निकले। यदि डाक्टर की सूचना के अनुसार कोई दवाई लें, तो बीमारी मिट जाती है। उसी तरह जप, तप, व्रत आदि अनेक साधनों में से एकान्तिक सन्त की आज्ञा से हम जो भी साधन करें, तो भवरोग मिट सकता है, परन्तु अपने आप मनमानी साधना करने से काम नहीं बनता तथा मोक्ष नहीं मिलता।

[5]

स्वामिनारायण हरे! स्वामी ने बात कही कि :

'प्रह्लादजी ने बहुत दिनों तक नारायण के साथ युद्ध किया, परन्तु भगवान को जीत नहीं पाए। तब भगवान ने प्रह्लाद से कहा, 'इस प्रकार युद्ध करने से तो तुम मुझे जीत नहीं सकोगे। मुझे जीतने का उपाय यह है कि जिह्वा से मेरा भजन करो, मन में मेरा चिन्तन करो और आंखों में मेरी मूर्ति रखो, इस प्रकार निरन्तर हृदय में मेरी स्मृति करते रहो।' फिर प्रह्लादजी ने उसी रीति के अनुसार निरन्तर साधना की; तब छः मास के अन्दर ही भगवान उनके वश में हो गए। अतः भगवान को प्रसन्न करने के लिए यही उपाय सर्वोपरि है, अतः

यह उपाय सीखना।'

जैसे किसी योद्धा को जीतने के लिए हमारे पास तलवार, ढाल, बन्दूक आदि साधनों का होना जरूरी है; परन्तु किसी विद्वान को जीतने के लिए साधन बेकार साबित होंगे। वहाँ तो विद्वता का ही साधन सफल होगा। जैसे किसी रोग के जीवाणु औषधि द्वारा मारे जाते हैं, बन्दूक से नहीं, उसी प्रकार सर्वशक्तिमान, सर्वोपरि भगवान को जीतने ते लिए लौकिक साधन उपयोग में नहीं आ सकते।

रावण, कंस आदि असुर शूरवीर ही नहीं; महाबुद्धिमान भी थे, फिर भी राम और कृष्ण को जीतने का उपाय वे नहीं खोज पाये और पराजित होना पड़ा। बलिराजा दैत्य थे; लेकिन उन्होंने भगवान को वश में कर लिया। उन्होंने सही उपाय खोज निकाला। अत: हमारी सारी इन्द्रियाँ भगवान के स्वरूप में एकरूप हो जाएँ, तो वे तुरन्त हमारे वश में हो जाते हैं। भगवान के एकान्तिक सन्त द्वारा ही यह उपाय हम हस्तगत कर सकते हैं। तब वह उपाय कठिन होते हुए भी सरल हो जाता है।

एक दिन गुणातीतानन्द स्वामी ने रामदास स्वामी को किसी काम के लिए वंथली भेजा और कहा कि 'रास्ते में 'स्वामिनारायण, स्वामिनारायण' मन्त्र का अखण्ड जाप करते हुए जाना।' वे इसी तरह भजन करते हुए वंथली पहुँचे तो गाँव के चारों ओर खड़े किले के हर कँगूरे पर उनको श्रीहरि की मूर्ति के दर्शन होने लगे। अत: हमें भी यह उपाय सीखना चाहिए।

25. कीर्तन

स्नेहभर्यां नयणे निहाळता हो,
वन्दन आनन्द घनश्याम ने...
अमीमय दृष्टिए निहाळता हो,
वन्दन आनन्द घनश्याम ने...
छपैयापुरमां वहालो आपे प्रगट थया,
धर्मभक्ति ने घेर आनन्द उत्सव थया,
सन्तों ने आनन्द उपजावता हो...
वन्दन आनन्द घनश्याम ने... स्नेह०

बालचरित्रों करी आपे वन विचर्या,
तीर्थों माँहे फरी जीवो पावन कर्या,
नीलकण्ठ नाम धरावता हो,
वन्दन आनन्द घनश्याम ने... स्नेह०
वल्कल वस्त्रों धरी पुलहाश्रमे रह्या,
ब्रह्मरूप तेज करी मोटा जोगी थया,
निजस्वरूप समजावता हो...
वन्दन आनन्द घनश्याम ने... स्नेह०
लोजपुर गाम रही सरजूदास कहाविया,
सर्वोपरि ज्ञान दई सन्तोंने रिझाविया,
मुक्तानन्द प्रेम थकी पूजता हो...
वन्दन आनन्द घनश्याम ने... स्नेह०

स्नेहपूर्ण अमीमय दृष्टि डालते हुए घनश्याम आनन्दकन्द महाप्रभु हैं। उनको हम वन्दन करते हैं। हे प्रभो! आपने छपैयापुर में धर्मभक्ति के घर प्रकट होकर वहाँ आनन्द-उत्सव करवाया। सन्तों के अन्तःकरण आनन्दविभोर कर दिए।

हे नीलकण्ठ! बालचरित्र करके आप वन में पधारे, तीर्थों में घूमकर वहाँ के जीवों को आपने पावन किया।

हे नाथ! आप वल्कल पहनकर पुलहाश्रम में रहे, ब्रह्मतेज प्राप्त करके आप महायोगी बने। आपने इस प्रकार अपना स्वरूप सभी को समझाया।

हे परब्रह्म! आप सरयूदास नाम धारण करके लोजपुर में रहे, सदा सर्वोपरि ज्ञान देकर सन्तों को आपने प्रसन्न किया। धन्य किया। मुक्तानन्द स्वामी आपकी पूजा करते हैं।

आनन्दकंद सहजानन्द स्वरूप घनश्याम को हम सभी की ओर से प्रेमपूर्वक वन्दना।

❦